हिन्दी
शीराज़ा
जे.एण्ड के.अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

शीराज़ा हिन्दी

द्विमासिक

शीराज़ा हिन्दी

अप्रैल–मई, 2002

प्रमुख संपादक

बलवंत ठाकुर

संपादक

श्याम लाल रैणा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू - 180 001

SHEERAZA (Hindi) Regd. No. : 28871/76 April-May 2002

वर्ष : 38 अंक : 1 कुल अंक : 156

Editor-in-Chief

BALWANT THAKUR

Editor

SHYAM LAL RAINA
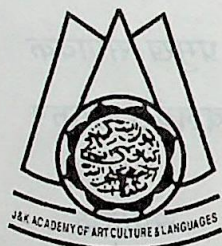
COVER PAGE : Krishna Lifting The Mountain Goverdhana Illustration to the Bhagavata Purana Tira-Siyanpur, Early Eighteenth Century.

❖ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं इनसे अकैडमी या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चन्द, जालन्धर-144 004

संपर्क : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू एंड कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू।

दूरभाष : 577643, 579576

मूल्य : एक प्रति 10 रुपये, वार्षिक : 50 रुपये

इस अंक में

संपादकीय

❖ आलेख

राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाएं : डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स 1

पालि साहित्य में विश्व-बन्धुत्व की अवधारणा : डॉ० आर० एन० प्रसाद 5

मुस्लिम कवियों की कृष्ण-कल्पना : नोतन लाल 11

धर्म एवं राजनीति बनाम अन्धपङ्गुन्याय : प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र 17

❖ बातचीत

स्मृति, सृजन और इतिहास : डॉ० रजनी बाला 22

❖ यादों के झरोखे से

सत्यम् भाई का सहयोग : डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क 29
प्रस्तुति : अनीता बलौरिया

❖ कविता

मृतकों के लिए प्याऊ : डॉ० चन्द्र प्रकाश देवल 33

आप : दिविक रमेश 34

ठहर नहीं गया हूं : महाराज कृष्ण संतोषी 35

यादें-चार कविताएं :
सूखी नदी/भूकम्प/आग की लपटों
में सुनहरी तस्वीरें/सिन्धौरा : डॉ० नरसिंह श्रीवास्तव 36

चिट्ठी : मोहन राणा 39

गीत : बृज मोहन 40

❖ कश्मीरी लोक रंग

कई रस्मों को इंगित करता एक लोक-गीत : पृथ्वीनाथ मधुप 41

❖ हिन्दी अनुवाद

छकरि गीत : 48

❖ इतिहास के झरोखे से

राजा इन्द्रजीत की प्रेयसी राय प्रवीण : जगदीश प्रसाद 'साहनी' 49

खण्डरों में छिपी हैं प्रणय गाथाएं : धर्मचन्द्र प्रशान्त 51

कश्मीर और कामरूप के बीच सेतु-महारानी अमृतप्रभा : डॉ० अशोक जेरथ 53

सांप सीढ़ी : जसविंदर शर्मा 56

❖ पुस्तक-समीक्षा

जीवनानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति : डॉ० राहुल 57

कश्मीर का साहित्यिक संदर्भ : एक बहस : श्याम बिहारी 'सागर' 61

ग़ज़ल : केवल गोस्वामी 67

जसरोटा चित्रकला : मनसाराम 'चंचल' 68

❖ विचार प्रवाह

नारी जीवन : नित्य नई चुनौतियां : दीदार सिंह 72

❖ आयोजन 76

सम्पादकीय

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में दुनिया राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिस तेजी से बदली है उसने हमें अस्तित्व और अस्मिता के नये संकटों के सन्मुख खड़ा किया है। वर्तमान परिस्थितयों में जो कहीं भी आतंकवाद से त्रसित एवं पीड़ित है उसकी वेदना की गुहार को स्वर देना रचनाकार का कर्म है। सामाजिक सरोकारों को छोड़ कर साहित्य मूल्यपरक नहीं हो सकता।

अपने राज्य जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में देखें तो नब्बे का दशक आतंकवाद के चलते हमारे समाज और हमारी संस्कृति के लिए काफी घटनापूर्ण और बदलाव भरा रहा है। आतंक, हिंसा, घृणा और विस्थापन की त्रासदी भरे इस दौर को राज्य के रचनाकारों ने अपनी-अपनी तरह से देखा, झेला और जिया है। हमारा प्रयास रहेगा कि शीराज़ा के आगामी विशेषांक विगत वर्षों में रची गई रचनाओं पर आधारित होंगे।

—श्याम लाल रैणा

राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाएं

❑ *डॉ० सत्य पाल श्रीवत्स*

आज हमारे सामने राष्ट्रीय एकता का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि दुर्भाग्य से अनेकों विघटनकारी तत्व आज देश की अखण्डता के लिए खतरा बने हुए हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम इन शक्तियों का सामना करने के लिए अन्य साधन अपनाते हैं तो देश में एक सम्पर्क भाषा और उसके साथ प्रादेशिक भाषाओं को सश्क्त बनाना भी नितान्त अनिवार्य है क्योंकि किसी भी राष्ट्र की भावात्मक एकता के लिए जितनी महत्वपूर्ण भूमिका उस देश की राष्ट्रभाषा या सम्पर्क भाषा की होती है उतनी अन्य साधनों की शायद ही हो। परन्तु यह बड़े दुःख की बात है कि हम इस सच्चाई के प्रति उतने जागरूक नहीं हैं जितना हमें होना चाहिए। यह या तो हमारी हीन भावना है या राष्ट्र की एकता के प्रति कर्तव्य विमुखता।

हमारे देश के संविधान निर्माताओं ने देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने से पहले अवश्य इस मुद्दे पर काफी विचार विमर्श और तर्क-वितर्क कर लिया होगा। उस समय संविधान निर्मात्री समिति में भारत के चुने हुए उच्चकोटि के विद्वान और न्यायविद थे, जिनमें अहिन्दी भाषी डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर और श्री के० एम० मुन्शी जैसे गण्य मान्य व्यक्ति भी थे। इसके साथ राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जो स्वयं गुजराती भाषा भाषी थे, ने भी हिन्दी को देश की राष्ट्र भाषा घोषित करने के लिए अपना अभिमत पहले ही दे दिया था।

ऐसा निर्णय होने के पीछे न तो हिन्दी के प्रति कोई पक्षपातपूर्ण रवैया था और न ही कोई राजनैतिक कारण, बल्कि ऐसा निर्णय लेने के पीछे हिन्दी के पक्ष में तथ्यपूर्ण आंकड़े थे। भारत के बहुसंख्यक लोग या तो हिन्दी अच्छी प्रकार बोल लेते हैं और पढ़ते हैं या उसे समझकर अपना काम चला लेते हैं।

भारत का संविधान बना और लागू हुआ परन्तु हिन्दी को व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रभाषा का दर्जा देने के रास्ते में अनेक बाधाएं खड़ी होती गई। दक्षिण भारतीयों के दिलों में यह भय बैठा दिया गया कि हिन्दी उत्तर के लोगों की भाषा है और यह उन पर जानबूझ कर थोपी जा रही है। उन्हें यह डर हो गया है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बना दी गई तो उनकी भाषाओं की प्रगति रुक जाएगी। उनका यह भय दूर करने के लिए प्रयत्न किए गए परन्तु दुर्भाग्य से उनके मन में

यह भय अब भी व्याप्त है। इसके कारण कुछ भी हो सकते हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि दक्षिण के चारों राज्य मिलाकर सभी अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी का अध्ययन करने वाले अनेक लोग हैं और जो इसे पढ़ते तक नहीं हैं वे भी टूटे-फूटे रूप में समझकर हिन्दी भाषी लोगों के साथ जहां-जहां भी जरूरत पड़े अपना कारोबार चलाते हैं। क्योंकि हिन्दी के सरल रूप-हिन्दुस्तानी के बिना उनके पास इतना सरल-माध्यम अन्य भारतीय भाषा हो भी नहीं सकती। यह न तो कोई अतिशयोक्ति है और न ही पक्षपात।

यह आश्चर्य की बात है कि देश में भाषावार राज्यों का निर्माण हो जाने पर भी अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी के विरोध में कुछ तत्व निरन्तर कार्य कर रहे हैं। इसके लिए हिन्दी भाषी राज्य भी उत्तरदायी हैं। देशद्रोही तत्व भी तथा राजनीति प्रेरित संकीर्ण मनोवृत्ति भी। परिणामत: न तो हिन्दी का यथोचित तीव्रगति से विकास हो रहा है और न ही प्रादेशिक भाषाओं का। इससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रभाषा या सम्पर्क भाषा हिन्दी के विकास पर ही प्रादेशिक भाषाओं का विकास निर्भर है। यदि इस देश में विदेशी भाषी अंग्रेजी का ही प्रभुत्व बना रहेगा तो न तो राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का अभीष्ट विकास होगा और न ही प्रादेशिक भाषाओं का ही।

कितने कष्ट से कहना पड़ता है कि आज जबकि हम भारतीय स्वतंत्रता के वर्षों गुजरने के बावजूद भाषा समस्या की उलझी हुई गुत्थी को सुलझा नहीं पाए हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्र-स्वाभिमान जैसे गुण हमारे भीतर कमज़ोर पड़ रहे हैं। और साथ ही राष्ट्र का अधिकांश बुद्धि कौशल पंगु होता जा रहा है। इसके बावजूद हम इस सच्चाई से भी मुंह नहीं मोड़ सकते कि हिन्दी का चिराग अब सारे देश में दिन प्रति दिन रोशनी देने की क्षमता रखता है। वह यदि भारत की प्रादेशिक भाषारूपी दीपकों को रोजमर्रा के शब्द देकर उन्हें भी अधिक प्रकाश देने वाला बना रहा तो उनसे उनके निजी शब्द लेकर अपने आप को और अधिक सशक्त कर रहा है। अत: अन्योन्य पूरक बनकर उनकी विकास गति सशक्त होती चली जा रही है। उनके विकास की गति भले ही धीमी क्यों न हो।

वास्तव में इस प्रक्रिया में जहां यातायात के साधनों का विकसित हो जाना एक कारण है, वहां दूरदर्शन और आकाशवाणी भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इन सब में भी समाचार पत्रों का भी कम महत्वपूर्ण योगदान नहीं है। इन साधनों के विकसित हो जाने से आम मजदूरों, छोटे व्यापारियों तथा अन्य व्यवसायों में काम करने वालों को भारी लाभ हो रहा है। यही कारण है कि लाखों की संख्या में मज़दूर अपने प्रदेशों से हजारों मीलों की यात्रा करके बम्बई, दिल्ली, कोलकाता, बंगलौर, कानपुर, चेन्नई जैसे बड़े शहरों में, यहां तक कि जम्मू, श्रीनगर, जालन्धर, शिमला जैसे शहरों में आकर अपनी रोजी-रोटी कमा रहे हैं। आखिर ये लोग इन शहरों में वहां लोगों के साथ हिन्दी या उसके सरल रूप हिन्दुस्तानी को छोड़कर किस भाषा के माध्यम से अपना काम काज चलाएंगे? इसके सिवाय उनके पास अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

हिन्दी के सन्दर्भ में यहां यह बात भी विचारणीय है कि हिन्दी को केवल उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान और मध्यप्रदेश की भाषा मानना सरासर भ्रामक धारणा से प्रेरित विचार है। उत्तरप्रदेश और बिहार की भोजपुरी, अवधी, ब्रज तथा मैथिली भाषाएं हो सकती हैं। इसी प्रकार मध्यप्रदेश, हरियाणा और राजस्थान की भाषाएं या बोलियां क्रमशः बुन्देली, बांगरू और राजस्थानी हो सकती हैं। परन्तु आज खड़ी बोली के रूप में जो हिन्दी संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त है यह तो पूर्व में आगरा-मथुरा से दिल्ली तक, करनाल से दिल्ली तक दक्षिण में हैदराबाद से दिल्ली तक और इसी प्रकार दिल्ली से पश्चिम की ओर फैले कुछ प्रदेशों में ही विकसित हुई है और मूलतः बारहवीं शताब्दी से और व्यवहारतः सतरहवीं शताब्दी से इन्हीं प्रदेशों में जन्मी और यहीं पर विकसित होती हुई आज इस रूप में हमारे पास पहुंची है।

मुगल काल में जब दरबारी भाषा का श्रेय फारसी भाषा को मिला था तो उस समय आम जनता के व्यवहार के लिए, विशेषतः सेना के सैनिकों और पुलिस के कर्मचारियों या सिपाहियों के लिए एक भाषा की आवश्यकता पड़ी थी। उस समय पुरानी पंजाबी, परशियन और ब्रज भाषा के मेल से जो भाषा विकसित हुई उसको शुरू में डेकनी या दक्खनी, रेखता, हिन्दी, हिन्दवी और उर्दू आदि अनेक नामों से पुकारा जाने लगा। बाद में परशियन लिपि में फारसी से प्रभावित उर्दू विकसित हुई और देवनागरी लिपि में लिखी जाती हुई संस्कृत से प्रभावित जो भाषा उभर कर सामने आई वह हिन्दी कहलाई। ऐसी स्थिति में हिन्दी और उर्दू का झगड़ा खड़ा करना उचित नहीं है। हिन्दी और उर्दू तो एक ही भाषा के दो पक्ष हैं। आज हिन्दी के उर्दू मिश्रित सरल रूप, जिसे या तो सरल खड़ी बोली कहते हैं या हिन्दुस्तानी, का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है और बढ़ता ही जा रहा है। परन्तु हिन्दी का यह रूप किसी प्रादेशिक भाषा के रास्ते में रूकावट नहीं बन रहा है। यह एक सुखद स्थिति है। जो तत्व इस प्रक्रिया को जानबूझ कर बिगाड़ने का प्रयत्न करते हैं वे निः सन्देह अपने ही देश का अहित करते हैं।

यहां यह तथ्य भी स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि खड़ी बोली के विकास में यदि हिन्दू लेखकों और कवियों का योगदान रहा है तो हम यदि अमीर खुसरो, कबीर, इंशाअल्ला खां, रहीम और रसखान, सन्त कवि दरया साहब (दो) आदि अनेक मुसलमान कवियों और लेखकों का योगदान कैसे भूल सकते हैं। असल में हिन्दी खड़ी बोली का जन्म तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो की पहेलियों में और चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में होने वाले सन्त कबीर के पदों में स्वतः ही देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में इन दोनों मुसलमान कवियों के क्रमशः दो पद विचारणीय है :-

1. एक थाल मोतियन भरा सबके उपर औंधा धरा वह थाल सब के सिर पर फिरे मोती उसका एक न गिरे।

2. गोधन गजधन वाजीधन और रत्न धन खान जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान।

ऊपर दिये गए विचार-विमर्श से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हिन्दी का वर्तमान रूप राष्ट्रीय एकता की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसी में राष्ट्रीय एकता निहित है। हिन्दी का न तो किसी प्रादेशिक भाषा से (उर्दू को मिला कर) झगड़ा है और न ही वह किसी भी प्रादेशिक भाषा के लिए किसी भी प्रकार की बाधा बन सकती है। हिन्दी को भारत के प्रत्येक राज्य में कहीं अधिकांश और कहीं अल्पांश रूप में लोग बोलते हैं और समझते हैं तथा एक भाषा को बोलने वाले लोग दूसरे प्रदेश के लोगों के साथ बातचीत का माध्यम हिन्दी को अपनाते हैं, यद्यपि कुछ पढ़े-लिखे न जाने किस मनोवृत्ति से प्रेरित होकर केवल अग्रेजी में ही बातचीत करना पसन्द करते हैं। यहां इतना कहना अनिवार्य है कि यदि किसी भी प्रदेश के रहने वाले भारतीय हिन्दी में बातचीत न कर सकने के कारण दूसरे राज्य के लोगों के साथ बातचीत के लिए अंग्रेजी माध्यम को अपनाते हैं तो यह उनकी विवश्ता हो सकती है। यद्यपि उन्हें भी हिन्दी अवश्य सीखनी चाहिए। परन्तु जो लोग अपनी मातृभाषा तथा हिन्दी में भली प्रकार से अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाने की क्षमता रखते हैं, यदि वे भी दूसरों पर अपना प्रभाव जमाने की दृष्टि से अंग्रेजी में भाषण तथा बातचीत करते हैं तो यह उनकी मानसिक और बौद्धिक दासता की प्रवृति ही समझनी चाहिए।

अन्त में यही कहना होगा कि यदि हम अपने देश को एक गौरवशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहते हैं, तो हमें रूस, चीन, जापान, फ्रांस और जर्मनी जैसे देशों के समान अपनी राष्ट्रभाषा तथा प्रादेशिक भाषाओं को समृद्ध करके इन्हीं के माध्यम से हर प्रकार की उन्नति की ओर कदम बढ़ाना होगा। यह एक अनिवार्यता ही नहीं बल्कि एक ऐसी सच्चाई भी है जिसे कभी झुठलाया नहीं जा सकता।

संपर्क : 47/5 रूप नगर, हाऊसिंग कॉलोनी, जम्मू - 180 013.

पालि साहित्य में विश्व-बन्धुत्व की अवधारणा

❑ डॉ० आर० एन० प्रसाद

विश्व समुदाय में काफी उथल-पुथल के पश्चात एक बार पुनः विश्वशान्ति की कामना को बल मिलने लगा है। इस परिप्रेक्ष्य में विश्वस्तर पर बन्धुत्व की स्थापना में इसके विकास हेतु विचार करने पर मानव समुदाय विवश हुआ है। वीसवीं शताब्दी में हुए अनेक कान्तिकारी परिवर्तनों ने मानव को झकझोर कर रख दिया है। हमने भौतिकता के क्षेत्र में सर्वांगीण एवं आश्चर्यजनक प्रगति की है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप होने वाले नित नये अनुसन्धानों ने अभूतपूर्व विकास की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया है। कभी अ५न मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने की चिन्ता से ग्रस्त मानव आज धरती से ऊपर अन्य ग्रहों पर घर बनाने की बात सोच रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी ने विश्व को एक छोटे से डिब्बे में (कम्प्यूटर) में कैद कर 'दुनिया मेरी मुठठी में' वाली कहावत को चरितार्थ कर दिया है। वैज्ञानिक अपने नवीनतम प्रयोगों की सफलता से गौरवान्वित हो रहे हैं। भले ही अगले क्षण वह सफलता गौण हो जा रही है। हमारी पूरी जीवन-पद्धति ही बदल गई है; किन्तु सिक्के के दूसरे पहलू की भाँति इस विकास-यात्रा के कुछ दुष्परिणाम भी हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं। स्वचालित मशीनों ने मनुष्य को बेरोजगारी का अभिशाप दिया है। विभिन्न रासायनिक प्रयोगों ने वातावरण में अनेक प्रकार के रोगाणुओं को जन्म दिया है। कारखानों द्वारा वायुमण्डल में विसर्जित खतरनाक गैसों से हमारी श्वसन-प्रणाली बाधित एवं अनेक असाध्य रोगों का शिकार हो रही है। सौर ऊर्जा के अधिकाधिक क्षरण से ओजोन परत के टूटने की आशंका बन रही है। मनुष्य की औसत आयु में वृद्धि अवश्य हुई है किन्तु उससे भी अधिक वृद्धि मानव जीवन के भावी खतरों में हुई है।

प्रारम्भ में जब मनुष्य ने अपनी सुरक्षा हेतु एवं राष्ट्रों ने अपनी सीमा की सुरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्रों का अनुसंधान किया तो उसके, मस्तिप्क में आज का भयावह रूप कदापि नहीं आया होगा। यही कारण है कि अपने ही द्वारा निर्मित जाल में वह इस तरह आबद्ध हो चुका है कि उससे बाहर निकलने का मार्ग उसे नहीं मिल पा रहा है। तिब्बती सहित्य में एक लघु कथा का सरांश इस प्रसंग में उद्धरणीय है। एक तिब्बती चित्रकार ने बड़े मनोयोग से श्रमपूर्वक एक दहाड़ते हुए शेर का चित्र बनाया। अपनी कला को चरम पर पहुँचा कर वह चित्रकार अपनी कृति को ध्यानपूर्वक देखने लगा। चित्र इतना सजीव हो उठा था कि वह चित्रकार उस से स्वयं आतंकित हो उठा। उसे बार-बार देखने पर लगने लगा कि वह शेर वास्तव में उसे खाने के

लिए उसकी ओर आ रहा है। ठीक यही हाल आज के मनुष्य का है। अपने द्वारा ही निर्मित घातक हथियारों के दुरुपयोग के भय से त्रस्त विश्व समुदाय चिन्ताग्रस्त है।

भौतिक उत्थान का ग्राफ जिस प्रकार ऊपर चढ़ा है इसी अनुपात में हमारा नैतिक पतन भी हुआ है। वैमनस्य एवं कटुता का साम्राज्य स्थापित हुआ है। व्यक्ति जिस तरह स्वकेन्द्रित, स्वार्थी, निर्दयी एवं उच्छृंखल आज है स्यात् पहले कभी नहीं था! विश्वसमुदाय के समक्ष एक नयी सबसे बड़ी समस्या आतंकवाद की है जिसके लिये विधिवत् प्रशिक्षण धन तथा हथियार उपलब्ध कराये जा रहे है। धर्म की तथाकथित रक्षा के नाम पर चल रही हिंसा की लहरें उफान पर हैं। फलस्वरूप पारस्परिक प्रेम सौहार्द एवं बन्धुत्व की भावना का सतत् क्षरण हो रहा है। यह स्वाभाविक भी है। विध्वंसक अस्त्र-शस्त्र हमें पड़ोसी से सुरक्षा में रखने में समर्थ हो सकते हैं किन्तु उसके प्रतिफल के रूप में ईर्ष्या, कटुता एवं वैमनस्य की वृद्धि अवश्यम्भावी है। इस क्षेत्र में विज्ञान हमारी कोई मदद नहीं कर रहा है। वैज्ञानिक अपने नूतनतम प्रयोगों की सफलता से अभिभूत हैं, भले ही उनके वे प्रयोग किसी समुदाय के लिये घोर संकट खड़ा करें।

इस संकट का कोई वैज्ञानिक समाधान न देखते हुये एक बार पुनः विश्व में शान्ति स्थापना के स्वर गुजायमान होने लगे हैं। विश्वबन्धुत्व की भावना के जागरण की बात होने लगी है। इस क्षेत्र में हमारे धर्मशास्त्र हमारी पर्याप्त सहायता कर सकते हैं। भारतीय परम्परा तो प्रारम्भ से ही शांति की कामना से प्रेरित हैं। पृथ्वी की शांति के साथ-साथ अन्तरिक्ष की शांति की भी कामना की जाती है। स्वर्ग में भी शांति की बात कही जाती है। हमारी परम्परा में राम, कृष्ण, बुध, महावीर, ईसा मसीह, मोहम्मद साहब, कबीर, नानक, गाँधी आदि की अनु - प्रेरणायें इस भावना को सम्वल प्रदान करती रही हैं। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में शांति एवं बन्धुत्व के स्वर गुंजायमान हैं। पालि-साहित्य भी उनमें से एक है, जिसमें बौद्ध धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप दृष्टिगत होता है। अधिक विस्तार में न जाकर एक बिन्दु मात्र को उपस्थित करने का प्रयास यहाँ अभष्टि है, जिसे पालि-साहित्य में 'मेत्ता भावना' से अभिहित किया गया है।

सृष्टि के आदिकाल से ही स्व और पर के अन्तर की गणना होती आयी है। स्व और पर का भेद मूलतः समाप्त तो नहीं हो सकता किन्तु इनमें समता की भावना का अभ्यास कर दोनों के मध्य प्रवर्तमान ईर्ष्या एवं कटुता को समाप्त करना सम्भव हो सकता है। मनुष्य में स्वत्व का आभास प्रकृतितः होता है। उसे स्व और पर से सन्धान का कार्य भावनात्मक अनुभूतियों के विकास से ही करना होगा। दूसरे की पीड़ा का अनुभव करने के लिए स्व को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करना अनिवार्य है। यही कारण है कि पालि सूत्रों में सर्वप्रथम अपने को सुखी, दुःखरहित, व्यापादरहित एवं उपद्रवरहित होने की कामना की गयी है। स्वयं को सुखी, दुःखरहित एवं उपद्रवरहित होने की अनुभूति के पश्चात् इसकी कामना दूसरों के हित करनी चाहिये। जिस प्रकार मैं सुख चाहता हूँ और मरना नहीं चाहता हूँ इसी प्रकार अन्य सत्व भी हैं। इस प्रकार स्वयं को साक्षी बनाकर तत्समान ही दूसरों के प्रति सुखी होने की कामना करनी चाहिये। यहाँ 'संयुत्त-निकाय' की एक गाथा उद्धरणीय है -

सब्बा दिसा अनुपरिगम्म चेतसा नेवज्झगा पियतरमत्तना क्वचि।
एवं पियो पुथु अत्ता परेसं तस्मा न हिसे परमत्तकामो॥

अर्थात् अपने चित्त से सभी दिशाओं में जाकर अपने से प्रियतर किसी को भी नहीं पाया। इसी तरह दूसरे प्राणियों को अलग-अलग उनकी आत्मा या शरीर प्रिय हैं, इसलिए अपने हित एवं सुख के लिए दूसरे की हिंसा न करें। इस रूप में विचार करते हुए व्यक्ति अपने प्रति विद्यमान मैत्री का विस्तार दूसरों तक करता है। इस सन्दर्भ में तथागत ने बड़े व्यावहारिक ढंग से प्राणियों का वर्गीकरण किया है और उपदिष्ट किया है कि इस मैत्री का विस्तार किस प्राणी से प्रारम्भ करना चाहिये। कारण स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं कि अप्रिय को प्रिय के स्थान पर रखने से मन दु:खी होगा। इसी तरह मध्यस्थ को अत्यन्त प्रिय के स्थान पर रखने से दु:ख होगा। वैरी को प्रथमत: स्मरण करने पर क्रोध उत्पन्न होगा। इसी लिये अप्रिय आदि इन चारों स्थानों में विद्यमान प्राणियों में पहले मैत्री के विस्तार का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। असमान लिंग में भाग करके अर्थात् अमुक स्त्री या अमुक पुरुष को लक्ष्य बनाकर मैत्री करने वाले को राग उत्पन्न होता है। एक घटना का इतिवृत्त यह बताता है कि एक अमात्य के पुत्र ने प्रारम्भ में अपने प्रिय से मैत्री का अभ्यास शुरू किया। उनको अपनी पत्नी बहुत प्रिय थी। सिद्धान्त के विरुद्ध पत्नी से मैत्री भावना करते हुये उन्हे राग उत्पन्न हो गया। रात का समय था घोर अन्धेरे में द्वार ढूंढते हुये सारी रात दीवाल से लड़ते रहे। इन सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये सर्वप्रथम अपने आदरणीय आचार्य गुरू, माता-पिता के प्रति उनके उपकारों का अनुस्मरण करके इस प्रकार मैत्री भावना करनी चाहिये कि 'यह सत्पुरुष सुखी हों, दुखरहित हों' आदि। तत्पश्चात् अपने प्रिय सहायक मध्यस्थ एवं शत्रु पर इस भावना का क्रमश: विस्तार करना चाहिये।

ध्यातव्य है कि अन्यों की अपेक्षा शत्रु के प्रति अपने चित्त को ऋजु बनाने में अधिक कठिनाई होना स्वाभाविक हैं। शत्रु की ओर चित्त को ले जाते ही उसके द्वारा आप के प्रति किये गये दुर्व्यवहार पौन: पुन्येन आपको कथित करते हैं। मन विचलित होने लगता हैं। क्रोध का आधिपत्य हठात् मन पर होने लगता है। इसके समाधान के लिए तथागत ने कुछ मार्गों का उपदेश किया है। सर्वप्रथम क्रोध के दुर्गुणों का प्रत्यवेक्षण करना चाहिये। क्रोध के वशीभूत होकर व्यक्ति दूसरे से अधिक अपनी हानि कर बैठते हैं। क्रोध से बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से सर्वनाश हो जाता है। 'बुद्धिनाशात् प्रणष्यति'। यही पाप का मूल कारक है। इस प्रकार अपने चित्त को समझाने का प्रयत्न सफल हो सकता है। इसमें भगवान द्वारा दिये गये दृष्टान्तों के स्मरण से सहायता ले सकते हैं कि 'अगर दोनों ओर मुठिया लगे आरा से लुटेरे अंग-प्रत्यंग काट डालें वहाँ भी जो अपने चित्त को दूषित करता है वह मेरे संघ में रहने लायक नहीं हैं। आगे पुन: कहा है कि यदि इस प्रकार अपने मन को उपदिष्ट करने पर भी वैर शान्त न हो तो व्यक्ति को अपने कर्मस्कन्धों का प्रत्यवेक्षण करना चाहिये। वह इस प्रकार कि 'हे पुरूष' तू

दूसरे के लिये क्रोध करके क्या करोगे? द्वेष के कारण तेरा ही अनर्थ होगा। तुम कर्मस्वक हो, कर्मदायाद हो, कर्मबन्धु हो। जो काम करोगे उसका दायाद बनोगे आदि वचनों से स्वयं को हेय एवं उपादेय का ज्ञान कराये। आज का विश्व इसी अनर्थकर क्रिया से अभिभूत है। दूसरे को पराजित करने के चक्कर में अपनी बड़ी से बड़ी हानि भी कर रहा है। अपने नागरिकों को स्तरीय जीवन-पद्धति देने की बात तो दूर उन्हें भोजन वस्त्र एवं आवास जैसी मूलभूत सुविधाओं को उपलब्ध नहीं करा सकने वाले राष्ट्र विनाशकारी अस्त्रों को प्राप्त करने में तन-मन-धन से प्रयासरत हैं। तथागत के उपदेश इसके ठीक विपरीत हैं।

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।। धम्मपद। ।

अर्थात् वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता है। यह जब भी शांत होता है तो अवैर अर्थात् मित्रता की भावना से (सहनशीलता से शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है)। यही सनातन धर्म है। जय एवं पराजय दोनों के दुष्परिणामों को बताते हुये बुद्ध कहते हैं।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं। । धम्मपद। ।

अर्थात् विजय शत्रुता को प्रसूत करती है पराजित दुःखपूर्वक सोता है जबकि शान्तचित्त व्यक्ति जय-पराजय को छोड़ सुखपूर्वक सोता है।

क्रोध के इन दुष्प्रभावों को प्रदर्शित करने के बाद भी मन शान्त न हो तो क्षान्ति (सहनशीलता) के गुणों का प्रत्यवेक्षण करना चाहिये। सम्भव है कि अधिक दिनों तक क्लेशों का दास होने के कारण यदि मन फिर भी शान्त न हो तो इस स्थिति में अपने अनादि होने का स्मरण करना चाहिये। कहा गया है कि इस संसार में वह सत्व सुलभ नहीं है जो हमारे पूर्व के असङ्ख्य जन्मों में कभी न कभी हमारी माता न हुआ हो, पिता न हुआ हो, भाई न हुआ हो। इस लिए उस आदमी पर क्रोध करना अनुचित है। उस पर ऐसा चित्त उत्पन्न करना उचित होगा- 'यह आदमी अतीत में मेरी माता होकर दस महीने पेट में ढोकर, मेरे मलमूत्र आदि को हरिचन्दन के समान घृणा नहीं करते हुए हटाकर, अपनी छाती पर नचाते हुए गोद में ढोते हुए पोसा था। बाप होकर बकरी एवं शंकु के जाने योग्य मार्ग से व्यापार करते हुए, जीवन की चिन्ता न कर नौका से महासमुद्र में जाते हुए तथा अन्य फुटकर कार्योंको करते हुए धन जुटा कर मुझे पोसा था। इसी प्रकार भाई, बहन, पुत्र-पुत्री आदि होकर भी उपकार किया है। इस पर मन बुरा करना समीचीन नहीं है।

उपर्युक्त उपायों के बाद चित्तशान्ति के लिए मैत्री भावना के लाभों का स्मरण करना उपयुक्त होगा। मैत्री से युक्त चित्त के ग्यारह विशिष्ट गुणों का स्मरण करना चाहिए। इस में

सीधा अपना लाभ दिखाई देता है। उदाहरण के रूप में 1- मैत्री का अभ्यस्त सुखपूर्वक सोता है। जैसे शेष लोग करवट बदलते हुए खर्राटे लेते हुए दुःखपूर्वक सोते हैं वैसे न सोकर वह सुखपूर्वक सोता है। 2- वह सुखपूर्वक उठता है। जैसे दूसरे लोग कहंरते हुये जम्हाई लेते हुये करवट बदलते हुये दुःखपूर्वक उठते हैं ऐसे न उठकर खिलते हुये कमल के समान सुखपूर्वक एवं विकाररहित हो उठता है। 3-वह बुरा स्वप्न नहीं देखता। स्वप्न आने पर भी कल्याणकर स्वप्न देखता है। पूजा-अर्चना करते या धर्म-श्रवण करते हुए के समान स्वप्न देखता है। 4- वह मनुष्यों का प्रिय होता है। 5- वह अमनुष्यों का प्रिय होता है। 6- देवता उसकी रक्षा करते हैं। 7- एक मिथक के अनुसार उस पर आग या हथियार का प्रभाव नहीं होता है। 8- उसका चित्त शीघ्र एकाग्र होता है। 9- उसके मुख की सुन्दरता बढ़ती है। 10- वह असम्मोह काल करता है अर्थात् उसकी मृत्यु सम्मोह (बेहोशी) के साथ नहीं होती। स्वस्थ अवस्था में नींद के समान उसकी मृत्यु होती है। 11- वह मर कर ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है।

अगले उपाय के रूप में धातुओं का विभाजन करने हेतु उपदिष्ट किया गया है। जैसे हे पुरूष! तुम इसके लिए क्रोध करते हो ? क्या इसके केशों के लिये ? क्या रोमों के लिये ? क्या नखों, मलमूत्र आदि के लिये क्रोध करते हो ? इसके जल, वायु, तेज आदि धातुओ पर क्रोधित होते हो ? क्या इसके चक्षु आदि आयतनों के लिय क्रोध करते हो ? इस प्रकार धातुओं का विभाजन करने से उसका स्थूल शरीर असत् हो जायेगा तथा साधक का चित्त अत्यन्त ऋजु हो जायेगा। जिस प्रकार आरा की धार पर सरसों रखना और आकाश में चित्रकर्म करना सम्भव नहीं होता है उसी प्रकार उसके चित्त पर क्रोध प्रतिष्ठित होने का स्थान नहीं होगा। अन्त में दान का संविभाग कर बैरी के प्रति चित्त को शान्त करना चाहिये। अपनी वस्तु दूसरे को देनी चाहिये और दूसरे की वस्तु लेनी चाहिये। यदि दूसरा आजीविका रहित हो, परिभोग के परिष्कारों से रहित हो तो अपनी ही वस्तु देनी चाहिये। ऐसा करने वाले व्यक्ति का उस आदमी के ऊपर का बैर बिल्कुल शान्त हो जाता है और स्वयं का अतीत के जन्मों से लेकर पीछे पड़ा हुआ भी क्रोध तत्क्षण शान्त हो जाता है।

इस स्थिति में पहुँचने के पश्चात् चारों प्रकार के व्यक्तियों पर समचित्त करके सीमा का भेदन करना चाहिये। इस सीमा-भेद के साथ ही एक दिशा से दूसरी दिशा, तीसरी एवं पुनः चौथी के पश्चात् नीचे ऊपर तिरछे सब जगह सर्वात्म के लिये सारे लोकों में मैत्री का अपरिमाण विस्तार करना चाहिये।

इन तथ्यों के तटस्थ अनुशीलन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मैत्री भावना की विस्तार की यह प्रक्रिया भले ही निवृत्तिमूलक विचारों से अनुप्राणित है तथापि इहलौकिक व्यवस्था में भी इस की बड़ी सकारात्मक भूमिका हो सकती है। व्यक्ति मात्र में इस भावना के संचार से हमारे समाज का तेजी से गिरता स्वास्थ्य सुधर सकता है। सामाजिक स्वास्थ्य को अनुकूल रखने हेतु शान्ति की आवश्यकता है जो मैत्री एवं बन्धुत्व की भावना के अभ्यास के

बिना असम्भव है। इसी भावना के अभ्यास से हम उस समाज की स्थापना में सक्षम हो सकते हैं जहाँ भूख, आतंक, वैमनस्य, ईर्ष्या, कटुता एवं निर्दयता का नहीं बल्कि सुख, समृद्धि, सौहार्द, सहयोग, परोपकार आदि का साम्राज्य होगा। स्व-पर-समता के भाव से जाति, गोत्र, वर्ण, भाषा, संस्कृति एवं क्षेत्र के नाम पर देश का विभाजन नहीं होगा। सीमा विस्तार की स्पर्धा नहीं होगी। सीमा सुरक्षा पर हो रहे धन का अपव्यय रोका जा सकेगा। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का उपयोग विध्वंसक हथियारों के निर्माण में नहीं बल्कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य के उन्नयन के लिए होगा। रीमोट कंट्रोल का उपयोग विस्फोटक के लिए नहीं बल्कि भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए होगा। इस प्रकार राष्ट्र एवं द्वीप की सीमाएं टूटेंगी और पूरी वसुधा एक कुटुम्ब होगा। आज सूचना प्रौद्योगिकी के चलते जिस विश्वग्राम की बात हम करते हैं उसे यदि अत्यन्त कल्याणकारी भावना का साहचर्य प्राप्त हो जाय तो धरा धन्य हो जायेगी।

संपर्क : *केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, चोगलमसर लेह-लद्दाख*

मुस्लिम कवियों की कृष्ण–कल्पना

❑ *नोतन लाल*

श्रीकृष्ण प्रेम की मधुर रस धारा ने मुस्लिम कृष्ण भक्त सन्तों सूफ़ियों और कवियों को भी कुछ कम आकर्षित नहीं किया। तत्कालीन हिन्दी काव्य की समृद्धि में उनका योगदान अप्रतिम है। भारत वर्ष में हिन्दू-मुस्लिम मिली-जुली संस्कृति सदैव ही साम्प्रदायिक सद्भावना, सहिष्णुता एवं राष्ट्रीय एकता का प्रतीक एवं दर्पण रही है। उर्दू काव्य में जहां इस्लाम पैगम्बरों, वलियों एवं बुजुर्गों की महानता एवं श्रेष्ठता के गीत गाये हैं, वही अन्य धर्मावलम्बियों के महानपुरूषों, अवतारों व संस्थापकों के प्रति भी श्रद्धा सुमन अर्पित किये गये हैं। श्री रामचन्द्र जी, श्री महावीर स्वामी, श्री गुरूनानक देव, महात्मा बुद्ध, छत्रपति शिवाजी एवं श्री कृष्ण पर उर्दू में जो रचनाएं मिलती हैं, उन्हें पढ़कर श्रद्धा से सर नतमस्तक हो जाता है।

उर्दू साहित्य में मुस्लिम कवियों की कृष्ण कल्पना उनके प्रति श्रद्धा तथा सम्मान पर आधारित रही है। कुछ लोग तो उन्हें 24 कलापूर्ण भगवान की संज्ञा देते हैं तो कुछ उन्हें महापुरूष, श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ तथा सम्पूर्ण मानवीय गुणों से युक्त अपना आदर्श मानते हैं। उर्दू काव्य सागर में श्री कृष्ण के बारे में जो श्रद्धा सुमन अर्पित किये गये हैं, वे **''कृष्ण भक्ति''** **''कृष्ण-प्रेम''** तथा **''कृष्ण-बन्दना''** के अनूठे उदाहरण हैं, जिनमें कृष्ण जी के **''लोकप्रिय व लुभावने व्यक्तित्व''** को बड़े सुन्दर ढंग से दर्शाया गया है।

कृष्ण भक्त कवियों में रसखान का नाम जाज्वल्यमान ध्रुव-तारक सा अमर है। इनका पूरा नाम सैयद इब्राहीम पिहानी वाले था। अकबर से किसी ने इनकी चुगली खायी, तो उन्होंने कहा-

''कहा करै रसखानि को, कोऊ चुगल लबार।
जो पे राखन हार है, माखन चाखनहार॥''

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि **रसखान** को श्रीकृष्ण (माखन चाखनहार) में कितनी दृढ़-आस्था, विश्वास तथा प्रगाढ़-स्नेह था। ब्रजलाल की विधि लीला-प्रसंगों का उत्कृष्ट, सजीव एवं सलोना चित्रण जो रसखान के काव्य में मिलता है वह अन्यत्र कहीं नहीं दिखता। श्री कृष्ण की जन्म भूमि और वहां के कण-कण पर तन-मन न्यौछावर करने का संकल्प **''रसखान''** की इस अराधना में स्पष्ट झलकता है-

''या लकुटि-अरू कामरिया पर
राज तिहूं पुर को तजि डारौ
आठ हूं सिद्धि नवौ निधि को सुख
नन्द की गाय चराई-बिसारों
रसखान कबौ इन आंखिन सौ
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारों
कोटिन हूं कल धोत के धाम
करील के कुंजन ऊपर बारौ''

कवि रसखान ने भगवान श्री कृष्ण का सानिध्य प्राप्त करने की कामना करते हुए पूर्वजन्म की आकांक्षा भी बड़ी प्यारी की है -

''मानुस हो तो वही रसखान
बसो बृज गोकुल गांव के ग्वारन
जो पशु हों तो कहा वश मेरो
चरों नित नन्द की धेनु मंझारन
पाहन हो तो वही गिरि को जो
धरयो कर छत्र पुरन्तर धारन
जो खग हों तो बसेरो करौं मिली
कालिन्दी मूल कदम्ब के डारन''

अकबर के दरबारी कवि **रहीम** जिनका पूरा नाम **अबदुर्रहीम खान खाना था** उन्हें अरबी, फारसी, उर्दू, अवधी और ब्रज भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उनके **''नीति के दोहे''** बहुत प्रसिद्ध हैं। वस्तुत: उनकी काव्य प्रतिभा का आधार **''कृष्ण-भक्ति''** ही थी। कृष्ण की सांवरी छवि पर उनका तन-मन न्यौछावर था। अपनी **एक वरवै में वे कहते हैं-**

**''अति अद्‌भुत छवि सागर, मोहनगात।
देखते ही सखि बूड़त, दृग जलजात।''**

कृष्ण भक्त रहीम परम दानवीर थे। वे अनुपम योद्धा थे, अकबर के महामंत्री और सेनानायक भी। दक्षिण के किसी हिन्दू-नरेश ने छल से जब उन्हें भोजन में विष देना चाहा था, तो **''ब्रजलाल कृष्ण** ने इन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर सचेत किया। इस तरह उनकी प्राण रक्षा हुई। श्री कृष्ण भगवान की मनमोहिनी सूरत कवि रहीम के हृदय में कैसी बसी है उसका एक आकर्षण इन पंक्तियों में देखिए-

**''ललित जलित माला का जवाहर खड़ा था
चपल चखन वाला चांदनी में खड़ा था**

कटितर निच मेला पीत सेला नवेला
अलिबिन अलबेला श्याम मेरा अकेला''

नजीर अकबराबादी एक ऐसे जनप्रिय कवि हैं जिनकी रचनाओं में हिन्दू-धर्म के अवतारों, महान पुरुषों तथा दर्शन शास्त्र का वास्तविक रूप मिलता है। उन्होंने अपने प्रिय 'कृष्ण कन्हैया' के सम्बन्ध में श्रद्धा, आदर व प्रेम के जो जज़्बात (भावनाएं) पेश किये हैं, उनसे उनकी कृष्ण भक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रौफेसर गोपीचन्द नारंग का कथन है- नज़ीर की नज्में (रचनाएं) कृष्ण कल्चर (संस्कृति) की अहमियत की नुमाइंदगी करने में कामयाब हैं। शुरू से आखिर तक उनमें लोक गीत का लुत्फ (मज़ा) मिलता है।''

नज़ीर की कविताओं में कृष्ण कन्हैया का जन्म, बांसुरी बजैया का बालपन, कन्हैया जी के खेलकूद, कन्हैया जी की शादी, कन्हैया जी का रास, श्री कृष्ण दस-रस महता की तारीफ आदि में कृष्ण जी के व्यक्तित्व को बड़ी सुन्दरता से दर्शाया गया है।

''कन्हैया जी का जन्म'' में श्री कृष्ण जी के जन्म का वर्णन करते हुए नज़ीर कहते हैं -

है रीत जनम की यूं होती, जिस घर में बाला होता,
उस मंडल में हर मन भीतर, सुख चैन द्रुबाला होता
सब बात बिथा की भूल है, जब भोला भाला होता है
आनन्द मदीले बाजत हैं, नित भवन उजाला होता है,
यूं नेक निछतर लेते है, इस दुनिया में संसार जनम
पर उनके और ही लच्छन है, जब लेते हैं अवतार जनम।

जब संसार को उजाला देने वाला अवतार बालपन की उस सीमा तक पहुंचता है, जो शोखी, शरारत और नटखट की प्रतीक होती है तो नटखट ''कन्हैया'' किस प्रकार घर-घर जाकर ग्वालिनों का दूध दही चुराता है-

''ये घर गुवालिनों के लगे अधर में जा-ब-जा
जिस घर को खाली देखा, उसी घर में जा फिरा
कुछ खाया कुछ खराब किया, कुछ दिया, ऐसा था
बांसुरी के बजैया का बालपन
क्या-क्या कहूं मैं किशन कन्हैया का बालपन।''

कृष्ण की रंगारंग व अनूठी शख्सियत की तरह उनकी बांसुरी भी अपना अनूठा स्थान रखती है। नज़ीर के शब्दों में उनकी ''**प्रेमभरी बांसुरी**'' सुनकर सारा संसार मुग्ध हो जाता है-

''जब मुरली धर ने मुरली को अपने अधर धरी
क्या-क्या प्रेम भरी उसमें धुन भरी

लै उसमें राधे-राधे के हरदम हरि हरि
लहराई जो धुन उसकी इधर और उधर दरी
सब सुनने वाले कह उठे जय जय हरि हरि
ऐसी बजाई किशन कन्हैया ने बांसुरी।''

सारांश यह है कि **नज़ीर** केवल कृष्ण जी के मतवाले ही नहीं उनकी रचनाओं में भी श्री कृष्ण की महानता व श्रद्धा का वास्तविक स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है :-

मैं क्या क्या वरफी हूँ यारो
उस श्याम बरन औतारी के,
सौ किशन, कन्हैया, मुरली धर
मनमोहन कुंज बिहारी के
गोपाल, मनोहर, सांवलिया,
घनश्याम अटल बनवारी के
नन्दलाल दुलारे सुन्दर छब,
ब्रज चन्द मुकुट झलकारी के
नित हरि भज हरि भज रे बाबा,
जो हरि से ध्यान लगाते हैं
वो हरि की आसा करते हैं,
हरि उनकी सास पुजाते है।''

उर्दू साहित्य के दृढ़-स्तम्भ निहाल स्योहरवी ने कृष्ण की महानता को श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए लिखा है कि मानव समाज आदर्श जीवन की परिभाषा भूल चुका था तब श्री कृष्ण उसकी याद ताज़ा करने और अंधकार के पर्दे को हटाने के लिए संसार में आए-

''कायनाते जज्व-ओ-कुल का राजदां पैदा हुआ
मुख्तसर यह है कि आक़ाए जहाँ पैदा हुआ
नूर से मामूर जुलमतखान-ए-आदम हुआ
किस नजम्मुल से तुलू-ए-आज़म हुआ
जिस क़दर पर्दे जहालत के थे सारे हट गए,
ज़ुल्म ओ-इस्तब्दाद के तारीक बादल छट गए
बारिशे अल्ताफ से तूफाँ हुआ पाश इंसानों पे
राज़े-हस्ति-ए-इंसाँ हुआ।''

हयात-ए-जाविदां (अमर जीवन) का संदेश देने वाले श्री कृष्ण को अल्लमां 'सीमाब' अकबराबादी ने श्रद्धा सुमन प्रस्तुत करते हुए कहा है-

'हुआ तुलूए सितारों की दिलकशी लेकर
सुरूर आंख में नज़ारों में ज़िंदगी लेकर
खुदी के होश उड़ाने बसद नियाज़ आयेगा
नये प्यालों में सहवा-ए-बेखुदी लेकर
फ़ज़ाय दहर में गाता फिरा वो प्रीत के गीत
नशात खेज-ओ-सुकूँ रेज़ बांसुरी लेकर
जहाने-क़ल्ब सरापा गुदाज बन ही गया,
हर जर्रा मुहब्बत का साज़ बन ही गया।''

उर्दू के प्रसिद्ध शायर **मौलाना 'हसरत' मोहानी** सच्चे मुसलमान, स्वतन्त्रता सेनानी तथा कवि थे। उनका सूफियाना कलाम उर्दू साहित्य का बेशकीमती सरमाया है। कट्टर धार्मिक होते हुए भी जब वह मथुरा, गोकुल, बरसाना नंदगांव की कल्पना करते हैं तो उनकी भावनाओं में हलचल मच जाती है-

''मथुरा कि नगर है आशिकी का
दम भरती है आरजू इसी का
हर ज़र्रा सरज़मीन-ए-गोकुल
दारा है जमाल-ए-दिलबरी का
बरसाना व नन्दगांव में भी
देख आये हैं जलवा हम किसी का
पैग़ाम-ए-हयात-जाविदां का
हर नगमा कृष्ण की बांसुरी का।''

उर्दू साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठित कवि बी० एल० शोला इन शब्दों में श्री कृष्ण के प्रति अपने श्रद्धासुमन प्रस्तुत करते हैं-

''तू ही हैं हुस्ने रूखसारे-हक़ीकत
तू ही है परदा बरादारे हक़ीकत
तू ही है काशिफ़े असरारे अजली
तू ही है रूनमा-ए-हुस्ने-अबदी
तू ही है जलवा फरमा-ए-दो आलम
तू ही है खुदा तमाशा-ए-दो-आलम।''

श्री कृष्ण द्वारा महाभारत में अर्जुन को युद्ध के समय दिए उपदेश को आत्मसात कर मौलाना ज़फर अली ने गीता के प्रति अपनी श्रद्धा इन पंक्तियों में हृदय-स्पर्शी शब्दों में की है-

दिलों पर डालती आई है,
डोरे सहर के गीता,

नहीं मिटने में आई है-
यह जादू की लकीर अब तक।

श्री कृष्ण की नीति - संचालन का भी गुरमगान करते हुये वर्तमान परिपेक्ष्य में मौलाना ज़फर साहब आगे कहते हैं :-

''तेरी रथवानी का फिर
हिन्दोस्ताँ मोहताज है,
और इस नभ की हकीकत का
जहाँ मोहताज है।''

उर्दू के प्रसिद्ध शायर मूर्तिजा अहमद खाँ भी श्री कृष्ण के बड़े दीवाने हैं। इन्होंने श्री कृष्ण की बाँसुरी की प्रशंसा इस प्रकार की है :-

''कान अब तक सुन रहे हैं
बाँसुरी की वह सदा,
जो दिले अहले-दरद,
मथुरा में तड़पती रही।''

इन विख्यात कवियों व साहित्यकारों के अतिरिक्त महबूब तालिबशाह, सैयद क़ासिम अली, क़ाजी अशरफ महबूब, लतीफ हुसैन, इंशा, ताज, करीम बख्श, रसलीन पकरंग आदि अनेक मुसलमान कवि श्री कृष्ण रंग में रंगे थे। अत: उन्होंने उनके आलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनके गुणों एवं विशेषताओं का बखान अपनी कविताओं में लिपिबद्ध किया। हिन्दू और मुस्लिम समुदाय में पारस्परिक सौहार्द, बन्धुत्व और आपसी भाईचारे की जो सरस, पवित्र और अमर धारा इन मुस्लिम कवियों ने बहाई है, उसके सम्बन्ध में बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि भारतेन्दु हरीशचन्द्र ने उन पर ''कौटिक हिन्दु वारने'' अपने कथन को अक्षरश: सिद्ध किया है। इन मुस्लिम भक्त कवियों की श्रंखला में राही मासूम रजा का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने हिट सीरियल ''महाभारत'' में अपने उच्चकोटि के संवाद लिखकर साम्प्रदायिक सौहार्द का अनूठा एवं अनुकरणीय उदाहरण भारत के नागरिकों के सन्मुख प्रस्तुत किया है।

इसी सन्दर्भ में प्रसिद्ध उर्दू शायर अली सरदार जाफरी की निम्न पंक्तियाँ विश्व के लोगों के लिए वर्तमान परिस्थितियों में बहुत ही प्रासंगिक है :-

''अगर कृष्ण की तालीम आम हो जाए,
तो फितनागरों का काम तमाम हो जाए,
मिटायें बिरहमन शेख तफर्रूकात अपने,
जमाना दोनों घर का गुलाम हो जाए।''

सम्पर्क :- डी-1209, दाबुआ कॉलोनी, फरीदाबाद, (हरियाणा) 121001.

धर्म एवं राजनीति बनाम अन्धपङ्गुन्याय

❑ *प्रो० अभिराज राजेन्द्र मिश्र*

भारतीय दर्शनों में सांख्य की प्रसिद्धि 'द्वैतदर्शन' के रूप में रही है क्योंकि सांख्य, वेदान्त के ब्रह्माद्वैत की तरह मात्र एक तत्त्व (परब्रह्म) को स्वीकार नहीं करता। वह सृष्टि के मूल में प्रकृति एवं पुरुष-दो तत्त्वों की सत्ता स्वीकार करता है। सांख्य की प्रकृति त्रिगुणात्मिका एवं जड (निष्क्रिय) है जब कि पुरुष निर्गुण एवं चेतन है। जड प्रकृति में सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुण साम्यावस्था में पड़े रहते हैं। परन्तु चेतन पुरुष का साहचर्य मिलते ही जड प्रकृति स्वयं चेतन हो उठती है। परिणामतः निष्क्रिय पड़े गुण वैषम्यावस्था को प्राप्त कर सक्रिय हो उठते हैं और प्रारंभ हो जाती है सृष्टि की प्रक्रिया।

सांख्य-दर्शन बताता है कि प्रकृति और पुरुष का संयोग 'अन्धपंगुन्याय' से होता है। अन्धे को दृष्टि नहीं है, वह मार्ग को देख नहीं सकता। गो कि वह यात्रा करने में पूर्णतः समर्थ है। दूसरी ओर, पंगु यात्रा तो नहीं कर सकता, पैर शक्तिहीन होने के कारण। परन्तु वह मार्ग दर्शन तो करा सकता है। अन्ध और पंगु दोनों ही अकेले तो विवश एवं असहाय हैं। दोनों ही यात्रा करने में असमर्थ है। परन्तु यदि पंगु अन्धे के कन्धे पर बैठ जाये और पंगु अन्धे को रास्ता बताता जाये तो, दोनों समन्वित रूप से, औरों के ही समान सुखपूर्वक यात्रा सम्पन्न कर सकते हैं। यही है अन्धपंगुन्याय!

धर्म एवं राजनीति का समन्वय होना अनिवार्य है। क्योंकि अकेला धर्म दृष्टिसम्पन्न तो है परन्तु गतिहीन है। उसे गतिशील बनाने के लिये आचार्य अथवा शास्ता की अपेक्षा है। इसी प्रकार अकेली राजनीति गतिशील तो है परन्तु दृष्टिहीन है। उसे दृष्टि (विवेक, उचित-अनुचित का निर्णय) दे सकता है तो केवल धर्म ही!

धर्म का अर्थ ही है जो धारण किया जाये? क्यों धारण किया जाये? अभ्युदय अर्थात् सांसारिक उन्नति एवं निःश्रेयस (पारलौकिक कल्याण अथवा मुक्ति) की सिद्धि के लिये।

धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यतोऽभ्युदयनिश्श्रेपससिद्धिः स धर्मः (पतञ्जलिः)

अब प्रश्न यह है कि यदि धर्म धारण करने योग्य वस्तु है तो उसे धारण कौन करेगा ? मनुष्य ही न! क्योंकि सांसारिक कल्याण-मंगल एवं उन्नति की अथवा मुक्ति की कामना मनुष्यों

को ही होती है। वही विवेक-सम्पन्न हैं। वही कर्मयोनि में उत्पन्न हैं जिसका शास्त्र-सम्मत अर्थ है- मुक्ति प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने में समर्थ, पशु, पक्षी स्थावर आदि तो भोगयोनि में उत्पन्न हैं। उनके पूर्वजन्म के पापों का नाश केवल भोग से ही सम्भव है। वे मुक्ति के लिये अपनी ओर से कोई अतिरिक्त प्रयत्न नहीं कर सकते हैं। अत: सिद्ध है कि धर्माचरण का अधिकार मात्र मनुष्यवर्ग को है। आचार्यों ने स्पस्टत: कहा है-

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च
समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

इस प्रकार धर्म के सन्दर्भ में भारतीय आर्षदृष्टि यह है कि धर्माचरणहीन मनुष्य में और पशु में कोई अन्तर नहीं। पशु मात्र संवेदना से सञ्चालित होते हैं, धर्म से नहीं। गाय बच्चे का भी चारा छीन कर खा जाती है। परन्तु कोई (मानवी) माँ ऐसा कभी नहीं करेगी। वह लाख भूखी हो, परन्तु पहले बच्चे को खिलायेगी। एक कामोन्मत्त सॉड़ उस बछिया से भी भोग करने से विरत नहीं होता, जिसे उसने स्वयं पैदा किया है। परन्तु मनुष्य भोग के सन्दर्भ में भी गम्य-अगम्य का विवेक तो रखता ही है!

राजनीति भी मनुष्यों से ही चलती है। नीयते इति नीतिः अर्थात् जो ले जाई जाये वही नीति है। ले जाने के लिये, ले जाने वाले (नेता) की अनिवार्य आवश्यकता है। ये राजनेता भी मनुष्य ही तो हैं। तो फिर धर्म उनके लिये क्यों नहीं है ? क्या राजनेताओं को धर्माचरणयुक्त मनुष्य न होकर, धर्माचरणहीन पशु होना चाहिये ? बीते दिनों में, जब भारत में राजतंत्र था तो राजा एवं उसके अमात्यों से धर्माचरण की अपेक्षा की जाती थी। आज जब लोकतंत्र है तो लोकप्रतिनिधि सांसदों एवं विधायकों से वही अपेक्षा की जा रही है। यदि सांसद एवं विधायक अथवा शासन का कोई भी सदस्य धर्म का आदर नहीं करता, धर्म का पालन नहीं करता - तो किस दृष्टि से आप उसे मनुष्य कहना चाहेंगे ?

भारत में इन दिनों अद्युत आत्मघाती आन्दोलन चल रहे हैं मसलन नारीमुक्ति-आन्दोलन, राजनीति से धर्म के बहिष्कार का आन्दोलन, साक्षरता-आन्दोलन, पर्यावरणरक्षा-आन्दोलन आदि। किन्तु सचाई यह है कि आन्दोलन तो प्रत्यक्ष दीख रहे हैं भीड़भाड़, रैली, अवैध रेलयात्रा, झण्डा, नारेबाजी, चक्काजाम एवं बन्द आदि के माध्यम से परन्तु न कहीं नारीमुक्ति दीख रही है न साक्षरता आ रही है और न ही पर्यावरण की रक्षा हो रही है।

राजनीति से धर्म को अलग करने का भी मुद्दा कुछ इसी प्रकार का है। यदि धर्म से राजनीति या राजनीति से धर्म अलग हो जायेगा तो क्या पशु शासन करेंगे। यदि आन्दोलनकारियों का यही लक्ष्य हो तो राजनीति को धर्म से अवश्य अलग कर देना चाहिये। परन्तु यह कोई नई

बात नहीं होगी। बस, इतिहास स्वयं को दुहरायेगा। रावण-कुम्भकर्ण, शिशुपाल-दन्तवक्त्र, कंस, जरासन्ध, दुर्योधन, वेन से लेकर वृहद्रथ तक जाने कितने चक्रवर्ती शासकों ने धर्मविहीन राजनीति की और कालकवलित हो उठे। परन्तु मर कर भी अमर हैं सम्राट् अशोक, विक्रमादित्य, पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, पुलुमावि, रुद्र-दामन्, कनिष्क, हर्ष, भोज, राजराज एवं छत्रपति शिवाजी जिन्होंने धर्म को प्रतिष्ठित कर शासन किया।

वस्तुत: जिस अर्थ में आज भारत में धर्म बनाम राजनीति की चर्चा हो रही है वह सन्दर्भ ही दूसरे प्रकार है। शाश्वत धर्म देश, काल और व्यक्ति की सीमा से परे होता है। वह सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वजनिक एवं विश्वजनीन होता है। वस्तुत: वह विश्वधर्म (Universal Religion) होता है। भारतीय ऋषियों महार्षियों ने जिस दसलक्षण-सम्पन्न धर्म को प्रतिष्ठित किया वही सच्चे अर्थों में विश्व धर्म है। वह मात्र भारत या भारतीयों के लिये नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिये है। महार्षि वसिष्ठ कहते हैं-

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

यही शाश्वत एवं चिरन्तन (Eternal) धर्म है। इसके परिपालनमात्र से सम्पूर्ण विश्व आज भी अभ्युदय एवं नि:श्रेयस की सिद्धि कर सकता है। इसी को **सनातन धर्म** भी कहते हैं जिसकी प्रतिष्ठापना भारतीय आर्षप्रज्ञा द्वारा की गई। सनातनधर्म अनादि एवं अनन्त है। यह धर्म जरथुष्ट्र, ईसा, मुहम्मद, नानक, बहाउद्दीन, बुद्ध अथवा महावीर सरीखे किसी एक व्यक्ति द्वारा आविष्कृत नहीं है प्रत्युत ईश्वराविस्कृत धर्म है जिसका पल्लवन श्रुतियों-स्मृतियों, धर्माचार्यो-सन्तों एवं श्रेष्ठ कवियों द्वारा अनवरतगति से किया जाता रहा है। यही धर्म राजनीति अथवा शासनतंत्र की आधारशिला है जिसका परिपालन प्रण्यश्लोक नल, पृथु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, राम एवं युधिष्ठिर सरीखे भारतीय नरेशों ने किया।

धर्म अनेक हो ही नहीं सकते। जब सम्पूर्ण विश्व के मानव एक हैं, सबकी शारीरिक-संरचना एवं संवेदना एक है तो धर्म उनका एक क्यों न होगा? सभी मनुष्यों में पाँच ही ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच ही कर्मेन्द्रियाँ, मन बुद्धि एवं आत्मा है। सबकी आवश्यकतायें एक हैं। सब सुखवादी हैं। सबका जन्म एवं मरण सुनिश्चित है तो निश्चित है कि सबके अभ्युदय एवं निश्रेयसु की सिद्धि का मार्ग भी एक ही होगा।

वस्तुत: जिसे आज हम पारसी, यहूदी, क्रिश्चियन, इस्लाम, सिक्ख, बौद्ध, जैन, बहाई धर्म कहने लगे हैं ये धर्म नहीं पंथ मात्र हैं, सम्प्रदायमात्र हैं। धर्म (Religion) एवं पंथ/सम्प्रदाय (sect) में सामान्य-विशेष का अन्तर है। पंथ या सम्प्रदाय व्यक्ति-विशेष की सोच से जन्म लेते हैं और अनुयायियों की संख्यावृद्धि के साथ बृहत् से बृहत्तर बनते जाते हैं। सनातन

धर्म, जो श्रुति-स्मृति पर आश्रित है, में ही देवविशेष की वरिष्ठता को लेकर शैव, शाक्त, वैष्णव तथा गणपति जैसे सम्प्रदाय स्थापित हो चुके हैं। वैष्णव में भी राम एवं कृष्ण के पृथक् सम्प्रदाय हैं। और आज तो हर धर्माचार्य अपना सम्प्रदाय चला रहा है। निरंकारी मिशन, ब्रह्माकुमारी, राधास्वामी, साईबाबामिशन, रामकृष्णमिशन, प्रणामी, रामनामी तथा अय्यप्पा आदि पचासों सम्प्रदाय सम्प्रति भारत में कार्यरत हैं।

परन्तु कोई भी पंथ या सम्प्रदाय धर्म नहीं है, यह मैं बड़ी विनम्रता से कहना चाहता हूँ। इन सम्प्रदायों से ही राजनीति को पृथक् होना चाहिये क्योंकि इन पंथों या सम्प्रदायों के अनुयायी सब नहीं होते। फलत: जब कोई राजनेता इन सम्प्रदायों का प्रतिनिधि बन कर राजनीति में आता है तो उस पंथविशेष का ही हित करने में सारी शक्ति लगा देता है तथा उसी संसदीय क्षेत्र के अन्य पंथानुयायी लाभ से वंचित रह जाते हैं। अत: पंथ एवं सम्प्रदाय के नाम पर राजनीति नहीं होनी चाहिये, जैसा कि भारत में हो रहा है।

यदि किसी निर्वाचनक्षेत्र में किसी सम्प्रदाय-विशेष के अनुयायी बहुमत में हो तो वहाँ उस सम्प्रदाय के किसी भी व्यक्ति को चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये। उस स्थिति में जनता स्वयमेव सम्प्रदाय के नाम पर किसी को नहीं चुनेगी। परन्तु भारत की भ्रष्ट राजनीति में यह सब संभव होता नहीं दीखता। सत्तालोलुप राजनेताओं की कथनी और करनी में जमीन आसमान का अन्तर है।

इस प्रकार, राजनीति से धर्म को नहीं, पंथ या सम्प्रदाय को निकाल बाहर करने की आवश्यकता है। धर्म मनुष्यों को बाँधता है, सम्प्रदाय उन्हें बाँटता है, उनमें विद्वेष कराता है।

भारतीय राजनीति में धर्म सदैव समरस रहा है। राजा धर्माचरण की प्रतिमूर्ति होता था। इसका एक अधुत उदाहरण महाकवि कालिदास-प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में मिलता है। जब हस्तिना पुर-नरेश दुष्यन्त को सूचना मिलती है कि कण्वाश्रम से कुछ ऋषि राजा से मिलने आये हैं तो वह अमंगल की आशंका से उद्भ्रान्त हो उठता है। अनेक विकल्प उभरते हैं उसके मन में- कहीं हिंसक जंगली जानवर आश्रमवासियों को पीड़ित तो नहीं कर रहे हैं। कोई तपस्वियों की तपश्चर्या में विघ्न-बाधा तो नहीं पैदा कर रहा है। या फिर मेरे ही पापों, अधर्मों के कारण तपोवन की वनस्पतियों में फल-फूल आना बन्द हो गया है? ऋषियों की क्या समस्या हो सकती है ?

आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो दीरुधा-
मित्यारुढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः॥

क्या विश्व की किसी संस्कृति या साहित्य में धर्म एवं शासनसत्ता का ऐसा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध निरुपित है कि राजा वृक्षों एवं लताओं की भी विपत्ति के लिये अपने ही किसी 'अपचरित'

(अधर्म) को जिम्मेदार माने ? परन्तु भारत की राजनीति में सदैव ऐसा ही हुआ है। यदि पौराणिक दृष्टान्तों को 'कल्पित' मान कर छोड़ भी दें तो इतिहास ऐसी घटनाओं का साक्षी है कि शास्ता नरेश अपने धर्म-अधर्म को ही प्रजा की सम्पत्ति-विपत्ति का कारण मानता था।

चोलनरेश राजराज ने वृहदीश्वर मन्दिर के शिखर पर स्थापित करने योग्य एक शिला को, देने से मना कर देने पर, उस शिला की स्वामिनी वृद्धा के पास स्वयं गया और उसके चरणों में सिर रख कर, उसे माँ कह कर तथा बेटा वन कर शिला माँग लाया। विश्व की कोई और राजसत्ता होती तो बुढ़िया का वध कर देती और शिला उठा लाती। छत्रपति शिवाजी ने कितनी ही मुस्लिम युवतियों को ससम्मान पालकी में बैठा कर, उनके भगोड़े पतियों के पास भिजवा दिया। परन्तु वहीं दूसरी ओर आततायी मुहम्मद बिन कासिम और मलिक काफूर के भी उदाहरण हैं। कासिम सिन्धुनरेश दाहिर का वध कर उनकी दो बेटियों को उठा ले गया। काफूर स्वयं तो क्लीब था परन्तु देवगिरी नरेश की रानी कमला और राजकुमारी देवलदेवी को उसने सौंप दिया अपने मालिक अलाउद्दीन खिलजी को।

'यथा राजा तथा प्रजा'। गीता में भी यही कहा गया है कि श्रेष्ठजन जो आचरण करते हैं, समाज के लिये वही प्रेरणास्त्रोत बनता है-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

ऐसी स्थिति में, केवल राजनीति ही नहीं, शिक्षा, न्यायपालिका तथा प्रशासन- सभी क्षेत्रों में धर्म की प्रतिष्ठा होनी आवश्यक है। तभी राष्ट्रकल्याण एवं विश्व मंगल- दोनों संभव हैं।

सम्पर्क :- *शिमला विश्वविद्यालय, शिमला-5*

बातचीत

स्मृति, सृजन और इतिहास

(प्रसिद्ध कवि, नाटककार डॉ० नरेन्द्र मोहन के साथ डॉ० रजनी बाला की बातचीत)

क्या आप रचना और रचनाकार का अंतर्संबंध मानते हैं?

रचना और रचनाकार का अंतर्संबंध तो सहज सिद्ध है। रचनाकार के बिना रचना कैसे संभव है? रचनाकार की लम्बी रचना-प्रक्रिया के भीतर से-शब्दपूर्व से शब्द-विधान तक रचनाकार ही तो है। रचनाकार जिस अनुभव से गुजरता है, उसी का मूर्त रूप रचना है।

तो क्या मान लें कि रचनाकार के व्यक्तित्व से रचना प्रभावित होती है ?

रचनाकार के आत्म-संघर्ष का परिणाम है रचना। उससे छनकर आती है वह। उससे प्रभावित तो होगी ही।

अभी आपने रचनाकार के व्यक्तित्व से रचना के छनकर आने की बात कही है। इस से क्या आशय है ?

इस से आशय इतना भर है कि रचनाकार की भावनात्मक, मानसिक और बौद्धिक बुनावट में जिन अनुभवों और विचारों का विन्यास रहता है उसी का निथरा हुआ रूप रचना है। परिवेश के प्रति 'रियेक्ट' करने की या उसे आत्मसात करने की उसकी अन्दरूनी ताकत के भीतर से रचना आकार ग्रहण करती है और अन्य संदर्भों तक फैल जाती है।

क्या इससे रचना के आत्मालाप होने का ख़तरा नहीं बन जाता ?

कमजोर लेखक के हाथों में कोई भी अनुभव आत्मालाप या प्रलाप बन जाएगा लेकिन एक अच्छे और समर्थ लेखक के द्वारा वही अनुभव (चाहे वह कितना व्यक्तिगत और आत्मीय क्यों न हो) विभिन्न संदर्भों में तनकर आत्मसत्ता की सीमाओं को लांघ जाता है, वैयक्तिक सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है।

आप रचनाकार के व्यक्तित्व को कैसे पारिभाषित करेंगे ?

मेरे विचार में रचनाकार के व्यक्तित्व में बुनियादी प्रवृतियों, संस्कारों, और आद्य-बिम्बों के साथ-साथ विभिन्न परिस्थितियों से पैदा हुए संतापों और संघर्षों, द्वन्द्वों, तनावों ओर फंतासियों

की एक जबरदस्त भूमिका रहती है। रचनाकार का व्यक्तित्व कोई बेजान गढ़ी हुई चीज़ नहीं है, न ही सम्पूर्णता में तराशी हुई। यह तो निरन्तर बनते-बनते बनता है, ढहता है, फिर बनता है। किसी भी लेखक के व्यक्तित्व की एक सीधी मुकम्मिल रेखा नहीं खींची जा सकती। वह जिस रेखा को बनाता है उसे खुद काटता-लांघता जाता है और पुनः नयी रेखा बनाने लगता है। इसीलिए रचनाकार के व्यक्तित्व को किसी एक ढांचे में, किसी एक परिभाषा में बांधा नहीं जा सकता। बहती हुई नदी के एक प्रवाह को देखकर आप यह नहीं कह सकते कि नदी इतनी भर है।

कुछ लोग रचनाकार के व्यक्तित्व को बड़ा अजीबोगरीब, असाधारण, असामान्य मानते हैं। मुझे ऐसा कुछ विशेष नहीं लगता। बुनियादी तौर पर वह भी साधारण व्यक्ति है, रोजमर्रा की घटनाओं से गुजरने वाला, दुखते-कसकते अनुभवों को झेलता, फर्क इतना है कि वह किंचित अधिक संवेदनशील ओर कल्पनाशील होता है।

अभी आप ने जिन्दगी के दुखते-कसकते अनुभवों की बात की है। आपकी रचनाधर्मिता इन से कहाँ तक प्रभावित हुई?

जिन दुखते, कसकते अनुभवों की चर्चा मैंने की है, उनकी जड़ें मेरी जिन्दगी के अतल में कही धंसी हुई हैं और वहीं से वे विभिन्न घटनाओं और प्रसंगों में आ गई हैं। दुःख और कसक भरे प्रसंग जन्म के साथ ही मेरे साथ आ जुड़े थे लेकिन तब मुझे उनके बारे में पता नहीं था। मेरे जन्म की घड़ी के साथ कर्फ्यू और सांप्रदायिक हादसे बिंधे पड़े हैं। लाहौर में 30 जुलाई 1935 को रात बारह बजे जब मेरा जन्म हुआ, शहर में कर्फ्यू था, अल्लाह-हो अकबर- और हर-हर महादेव के नारों से पूरा लाहौर आतंकित था। आतंक को जाना तो बहुत बाद में, पर वह मेरे बचपन के साथ कैसे नत्थी हो गया, पता ही नहीं चला। दुख, कसक और आतंक की प्रारंभिक अवस्थाओं से मैं चाहूँ भी तो मुक्त नहीं हो सकता। हां, उन्हें फैला सकता हूँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों तक। वह दुःख मुझे एक बड़े दुःख से जुड़ने की अनुभूति दे गया है। रही बात अन्य पारिवारिक संदर्भों की तो इतना ही कहूंगा कि एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की स्थितियों से मैं गुजरा हूं, आर्थिक अभावों से पैदा हुए भावनात्मक तनावों को मैंने झेला है। माता-पिता और भाईओं की बदलती मानसिकताओं को भी मैंने देखा-समझा है। पिता के उग्र और आक्रोशी स्वभाव और मां के स्नेह-दुलार के विरोधी ध्रुवांतों से टकराते हुए मैंने अतिवादी छोरों से बच निकलने के बारे में जरूर कभी सोचा होगा, ऐसा आज मुझे लगता है पर तब तो इतना बोध कहां था? उन्हीं दिनों शायद चुप्पी ओर सन्नाटे की एक परत मेरे भीतर जम गई होगी।

फिर इस चुप्पी और सन्नाटे के बीच शब्द की चिंता क्यों ?

चुप्पी और सन्नाटे के बीच एक मात्र शब्द ही तो है जिस पर भरोसा किया जा सकता है। यह वह आधार है जो गूंगे आत्म-संघर्ष को जुबान दे देता है। चुप्पी और सन्नाटे की स्थिति

को तोड़ने के लिए यानी यथास्थिति की भयावहता और विकटता को छिन्न-भिन्न करने के लिए शब्द ही तो एक मात्र साधन है। सम्प्रेषण का आधार भी शब्द ही है।

क्या वहीं से चुप्पी और विद्रोह का एक खास विधान आपकी रचनाओं में सरक आया ?

हां, ऐसा कह सकते हैं। दरअसल उस चुप्पी में विद्रोह पलता रहा था जो चुप्पी की चट्टान के हटने पर सामने आ गया और इस तरह चुप्पी और विद्रोह का एक खास विधान रचनाओं में उभर आया, विचार से उसका एक खास रिश्ता जुड़ा। इससे मैं उत्तेजनात्मक और निषेधात्मक रवैयों से बच सका। मेरी रचनाओं में विद्रोह और विचार के इस सधेपन की जड़ें चुप्पी की उस परत में ही पड़ी हुई हैं जो बचपन में मेरे भीतर बन गई थी।

चुप्पी और विद्रोह की यह बानगी आपकी काव्य-संवेदना और नाटकीय चरित्रों में भी तो रची बसी है ?

हां, यह तो है ही। चुप्पी और विद्रोह की प्रकृति अभिव्यक्ति के दौरान बदलती गई है। झेले हुए संदर्भों और अनुभवों के प्रति समय के बीतते जाने के साथ एक तरह की तटस्थता और निर्वैयक्तिकता आती गई है। इसे संसक्ति और तटस्थता का समीकरण भी कह सकते हैं। आपने ठीक मार्क किया है यह मेरी काव्य और नाट्य संवेदना का केन्द्रीय घटक है। इसे मेरी कविताओं की बुनावट में, लंबी कविताओं की संरचना और नाटकों के चरित्रों में देखा जा सकता है।

'एक सुलगती खामोशी' काव्य-संग्रह की पेंटिंग संबंधी कविताएं कहीं आपकी अन्तहीन चुप्पी की, शब्दों के माध्यम से चित्रात्मक अभिव्यक्ति तो नहीं ?

चुप्पी की अभिव्यक्ति मेरी कविताओं में कई तरह से हुई है कभी शब्दों और पंक्तियों के बीच की खाली जगहों में इस चुप्पी को सुना जा सकता है तो कही कहने-न-कहने के बीच के अंतरालों में। कभी यह चुप्पी कथ्य के साथ लिपटी हुई है तो कभी शैली के एक अन्तरंग गुण के रूप में। कहीं यह मुखर है तो कहीं बिना कोई आभास दिए बस है।' एक सुलगती खामोशी की कविताओं में खामोशी का सुलगना अनेक अर्थों की व्यंजना लिए हुए है। उस व्यंजना का एक आयाम पेंटिंग संबंधी उन कविताओं में मिलता है जिनका तुमने ज़िक्र किया है। इन कविताओं में यह अंतहीन चुप्पी चित्रकला के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है और इनमें चित्र और कविता करीब आ गए हैं। माना जा सकता है कि यह मेरी कविता की एक और दिशा है।

आपने अभी जो कहा है उससे लगता है चुप्पी आपके लिए एक शैली या अभिव्यक्ति प्रकार है ?

चुप्पी मेरी मानसिकता का हिस्सा रहा है, इसीलिए सबसे पहले यह मेरे काव्य संस्कार है और उस हद तक काव्य वस्तु से अभिन्न है। मेरी काव्य संवेदना और कथ्य की पूरी प्रक्रियाओं में उसकी हिस्सेदारी है। उसी के परिणाम स्वरूप वह मेरी शैली या अभिव्यक्ति का भी अभिन्न हिस्सा बनी है। वैसे भी कथ्य और शैली के अलगाव में मेरा विश्वास नहीं है।

क्या बुनियादी तौर पर यह चुप्पी की ग्रन्थि ही तो नहीं जो आपके विद्रोह को क्रान्ति से बदलने से रोकती है ?

शायद हां, शायद न। यह चुप्पी अगर मुझे संवेदनात्मक और वैचारिक धरातलों पर विद्रोह तक ले जाती है और परिवर्तन की चेतना उपजाती है तो क्या यह कम है? कविता का पूरी विश्वसनीयता से इतने भर दायित्व को निभा ले जाना मैं कविता का परम पुरुषार्थ मानता हूं। इस तरह की चेतना के प्रसार से व्यापक स्तरों पर परिवर्तन की कोई बड़ी चिंगारी सुलग उठे और कवि का शब्द कहीं सहायक हो सके किसी बड़े परिवर्तन के लिए इसे मैं महत्त्वपूर्ण मानता हूं। कविता पर इससे अधिक बोझ डालने से उसकी विश्वसनीयता के खंडित हो जाने का अंदेशा है। शब्द के भीतर की आग यानी सुलगती खामोशी की एक बड़ी भूमिका है पर सीधे-सीधे उसके जरिए कोई क्रांति होगी, इसमें मुझे संदेह है। क्रान्ति के लिए और बड़ी शक्तियां हैं जो उसे अंजाम देती हैं/ दे सकती हैं जिनमें कवि के शब्द की एक सहयोगी भूमिका हो सकती है।

आज जबकि उत्तर आधुनिकता के शोर में शब्द ही नहीं कृतिकार और कृति तक के अन्त की घोषणा कर दी गई हो, शब्द को थामें रखने की जिद कितनी कारगार हो सकती है?

कृति और कृतिकार के अन्त की घोषणाओं के बावजूद मैं यह मानता हूं कि कृति का अंत संभव नहीं। परिस्थितियां बेशक कितनी बदल जाएं, सृजनात्मक शब्द की खोज और उसके लिए तड़प बरकरार रहेगी। हां, यह हो सकता है कि कृति के घटकों में तेजी से परिवर्तन हो। यह भी संभव है कि सृजनात्मक शब्द के मिज़ाज में अंतर आ जाए। पुराने अर्थ में कृति को ग्रहण करने वाली तमाम अपेक्षाएं भी खत्म हो सकती हैं पर नए अर्थों में कृति और शब्द काम के रहेंगे, इसमें मुझे संदेह नहीं है। उत्तर आधुनिकतावादी दौर में टेक्नालोजी, अर्थतन्त्र, मीडिया और भूमण्डलीकरण की अन्य प्रक्रियाओं के बावजूद नये नये रूपों में मनुष्य को पाने की आकांक्षा बढ़ेगी। शोषण, अन्याय और आतंक की जो नई कड़ियां जुड़ रही हैं, उन्हें देखते हुए शब्द और रचना को उनकी पूरी शक्ति और हैसियत के साथ समझने की ज़रूरत इस समय पहले से कहीं अधिक है। शब्द को एक सच्चे और भरोसेमन्द साथी के तौर पर अपने करीब पाने और रखने की इच्छा उस मानवीय संसार को बचाए रखने से भी जुड़ी हुई है जिसे इस वक्त ख़त्म करने की साजिशें रची जा रही हैं। उत्तर आधुनिक समय में सत्ता के सर्वग्रासी रूप

को देखते हुई उसके सामने शब्द को खड़ा करने की इच्छा अगर ज़िद भी है तो यह एक रचनात्मक ज़िद है उन शक्तियों के ख़िलाफ़ जो मनुष्य के एक मात्र ठिकाने शब्द को कुचलने पर अड़ी हैं।

शब्द को लेकर आप बार-बार इतिहास में क्यों जाते हैं ? क्या यह वर्तमान से पलायन है, अतीत के प्रति मोह या एक दृष्टि जो आपको इतिहास से वर्तमान तक की त्रासदी तक ले जाती है ?

इतिहास में जाना न वर्तमान से पलायन है न ही अतीत मोह। यह तो वर्तमान और इतिहास को नयी तरह से देखने, उनमें किसी सूत्र की तलाश करने की कोशिश है। मैं अपने नाटकों में बार-बार वर्तमान की विभीषिका को समझने के लिए इतिहास में गया हूं और पुनः वर्तमान में लौट आया हूं। मेरी लम्बी कविताओं में भी कुछ ऐसा ही है। हमें लगता ह हमारी मौजूदा समस्याओं की जड़ें कही इतिहास में हैं। हमारी विचार सरणियों और स्मृतियों के ताने-बाने भी इतिहास में कहीं उलझे पड़े हैं। कई तरह से उलझे हुए उन तानों-बानों को मैं अपनी रचनाओं में समझने-समझाने और सुलझाने का प्रयत्न करता रहता हूं। हां यह सही है कि मेरे लिए यह एक दृष्टि है जो वर्तमान को इतिहास से और इतिहास को आज से देखने-समझने से बनी है।

अभी आपने इतिहास के सन्दर्भ में स्मृति का ज़िक्र किया है इतिहास और स्मृति का यह रिश्ता क्या है ?

किसी भी लेखक के लिए इतिहास केवल घटनाओं के संकलन या तथ्यों के आकलन का नाम नहीं है। घटनाओं और तथ्यों के साथ-साथ वह उनके पीछे की जिन्दगी को, लोगों को, उनके साथ जुड़ी अन्र्तकथाओं को भी ग्रहण करता है। इतिहास में अनेक खाली जगहें रहती हैं जिन्हें लेखक अपनी कल्पना से भरता है। कई बार इतिहास से यह पता नहीं चलता कि कोई घटना अचानक कैसे घटित हुई। वहां घटनाओं की श्रृंखला में बहुत-सी घटनाएं तो नदारद रहती हैं। लेखक अपनी कल्पना से उन घटनाओं में एक तारतम्य स्थापित करता है। इतिहास में बड़े-बड़े राजाओं, मंत्रियों, सांमतों ओर महारथियों के चेहरे तो दिखते हैं पर उन चेहरों के पीछे के चेहरे और आम आदमी की जिन्दगी नहीं दिखती। लेखक उन छिपे हुए या खोए हुए चेहरों की तलाश करता है और इस तरह इतिहास के ढांचे को प्राणवान बनाता है। समकालीन इतिहास से जुड़े हुए लेखक के लिए कल्पना की अपेक्षा स्मृति का महत्त्व कहीं अधिक है। किसी बड़ी घटना या किसी बड़े ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक हादसे से निपटते हुए जीते-जागते लोगों की स्मृतियां, उस दौर के लेखकों की स्मृतियां छूटी हुई कड़ियों को जोड़ने में, तथ्यों की शिनाख्त करने में, घटनाओं के पीछे की घटनाओं को समझने में बड़ी मददगार साबित होती हैं। इस तरह की स्मृतियों से स्पंदित लेखक इतिहास का नया, अधिक

प्रामाणिक रूप हमारे सामने खड़ा कर देता है। मैं इतिहास ओर स्मृति के इस अन्तर्संबंध का कायल हूं।

समकालीन बोध से संपन्न आप जैसे रचनाकार और आलोचक के लिए क्या यह अटपटा नहीं कि वह इतिहास ओर स्मृति की बातें करें?

समकालीनता समकालीन घटनाओं, तथ्यों और संदर्भों तक सीमित नहीं है। बोध और संवेदना के धरातल पर इतिहास से (स्मृति जिसमें शामिल है) इसका कोई विरोध नहीं है। आज के यथार्थ को पाने के लिए, उसे अधिक सशक्त ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए अगर लेखक इतिहास में जाता है और उसे अपनी कल्पना शक्ति और स्मृति-बोध के ज़रिए वर्तमान तक ले आता है तो यह उस लेखक की व्यापक दृष्टि और कला-कौशल का ही परिचायक है।

यह स्मृति-बोध व्यक्तिगत यादों तक सीमित है या ....।

स्मृति-बोध में व्यक्तिगत यादें ही क्यों, व्यक्ति से लेकर समाज और इतिहास शामिल रहता है।

वैयक्तिक, सामाजिक और ऐतिहासिक धरातल पर वे कौन-सी स्मृतियां है जो आपका लगातार पीछा करती रहती हैं ?

ऐसी स्मृतियां जिन्हें मैं संजोए रहा और जो मेरी रचनाओं में अभीव्यक्त होती रहीं, इतनी अंतरंग हैं कि उनके बारे में क्या कहूँ ? लगभग पांच वर्ष की उम्र में, कुछ दिनों के लिए गूंगे हो जाने की स्मृति मुझे है पर ऐसा क्यों हो गया यह मैं आज तक नहीं समझ पाया। 10-11 साल की उम्र में एक गोरी चिटठी सात आठ साल की लड़की का खिलखिलाते हुए आना और मुझे छू करके चले जाना, आज भी मुझे याद है। मां के स्नेह और पिता के स्वाभिमान के साथ मैं बड़ा हुआ हूं। विभाजन की स्मृति एक ऐसा नासूर है जो मुझे निरन्तर बेंधता रहता है। सनातनी परिवार के माहौल में (जिस में मैं पला-बढ़ा) ज़रूर कुछ ऐसा होगा जिसने मुझे धर्म के बाहरी ढांचों, रूढ़ियों, रीतियों, कर्मकाण्डों के प्रति उदासीन बना दिया। रिश्तों की खोखली रिवायत के विरोध में मेरा उठ खड़ा होना भी आकस्मिक नहीं है।

आपकी रचनाओं से ऐसा लगता है कि आग, नदी और पेड़ के स्मृति-बिंब आप को घेरे हुए है?

आग, नदी और पेड़ मेरी स्मृतियों में रचे-बसे हुए हैं। उनके साथ कई भाव, विचार और मनोदशाएं गुंथी हुई हैं। वे किसी एक भाव या विचार के प्रतिनिधि नहीं हैं। कई मानवीय प्रक्रियाएं उनमें समाहित हैं। मिसाल के तौर पर 'आग' मेरे लिए बटवारें के दौर के कई घिनौनें अग्निकाण्डों की स्मृति लिए हुए ही नहीं, मौजूदा अग्निकाण्डों को भी छिपाए हुए है। इतना ही

नहीं इसके ज़रिए मेरी विभिन्न प्रकार की मनोदशाएं अभिव्यक्त हुई हैं। इसी तरह 'नदी' मेरे लिए एक नदी भर नहीं है, लाहौर की रावी नदी है। आज वह दूसरे वतन में बहती है, पर अपनी भौगोलिक सीमाएं तोड़ कर जब मेरे भीतर बहने लगती है तो उस के साथ एक भरा पूरा सांस्कृतिक, सामाजिक माहौल जुड़ जाता है और इस तरह नदी बहु आवर्ती, सघन अर्थ छायाओं को व्यंजित करने लगती है। 'पेड़' भी मेरे लिए महज एक प्राकृतिक उपादान नहीं है, संस्कृति का वाहक शब्द है। विभाजन के दिनों में मैंने पेड़ को समूल जलते हुए देखा है। यह आज भी मेरी स्मृति को सुलगाता रहता है। इन तीनों बिंबों का स्रोत एक है पर उसके अर्थ और संदर्भ अनेक हैं। कालान्तर में उनकी अर्थ छायाएं बड़ी तेजी से बदलती गई हैं।

संपर्क :– द्वारा 239-डी, एम. आई. जी. फ्लैट्स, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली – 110027

यादों के झरोखे से

सत्यम् भाई का सहयोग

❑ *डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क*

इस समय तक की मेरी साहित्य साधना के लम्बे प्रयत्नों की उपलब्धियाँ कभी गिनता हूँ तो अपनी रचनाओं के साथ-साथ उन प्रभावों और प्रेरणाओं की याद भी जुड़ जाती है जिन्होंने मुझे इस डगर पर डाला और निरन्तर बिना थकान चलते रहने का प्रबल साहस भी दिया। बचपन और यौवन के आरम्भिक दिनों में यह प्रभाव जड़ें पकड़ते गए और प्रबल होते मेरे व्यक्तित्व में अंगीकार होते रहे। आखिर 1955 के बाद यह कार्यरूप में सामने आने लगे जब साहित्य रचना तथा इतिहास लेखन की प्रबल इच्छा ने मुझे उद्वेलित किया और रचना कार्य शुरू हुआ जो तभी से निरंतर जारी है। 1955 में पंजाब यूनीवर्सिटी के इतिहास विभाग के अध्यक्ष और पंजाब इतिहास के धुरंधर लेखक डॉ० हरीराम गुप्ता की देखरेख में मैंने इतिहास में शोध कार्य आरम्भ किया तब से आज तक इतिहास के मैंने 25 शोधग्रंथ लिखे हैं और 120 से अधिक रिसर्च पेपर भी सेमीनारों में पढ़े तथा अनेकों इतिहास/रिसर्च सम्बंधी जोर्नलज़ में छपे। इस के अतिरिक्त पहाड़ी भित्ती चित्रों पर बारह-पंद्रह वर्षों से चल रहे मेरे अनुसंधान के फलस्वरूप 12 वृहत् वाल्यूम भी तैयार हो चुके हैं। मुझे शायरी का भी शौक है। उर्दू कविता की मेरी दो पुस्तकें छप चुकी हैं-**अबरो-बार** (रूबाईआं) और **सरकते-साय** (नज़्में और गज़लें)। रिसर्च, लेखन और शायरी का सिलसिला अभी चल रहा है और कुछ उपलब्धियां अभी सम्भावित हैं।

यह सब कुछ गिनांने से मेरा आशय यह बताना है कि कभी देवयोग से मनुष्य पर ऐसे प्रभाव पड़ जाते हैं जो जीवन पर्यन्त उसका पीछा नहीं छोड़ते और निरंतर प्रेरणा का स्रोत बनते रहते हैं। मेरे लिए तो सब से पहला प्रबल और जीवन पर्यन्त निभने वाला प्रभाव तो मेरे स्वर्गीय पिता श्री का था जो मैंने होश संभालते ही ग्रहण करना शुरू किया। पिताश्री स्कालर प्रवृत्ति के आफीसर थे। उन्होंने 1920 के दशक में B.A., L.L.B. कर लिया था। उनके पास अंग्रेजी और उर्दू की बहुत सारी पुस्तकें थी। उन्हें पढ़ तो नहीं सकता था परन्तु उनमें जो तस्वीरें थीं वह मुझे बहुत आकर्षक लगती थीं। उनमें एक Dictionary of Phrases and Fables नाम की थी जिसमें चित्रों सहित कई विचित्र चीजों और अजायबात का वर्णन था जिनके विषय में अकसर पिताश्री मुझे बताया करते थे। तब मैं पहली-दूसरी क्लास में ही पढ़ता था परन्तु पिताश्री की हर किताब बड़ी रूचि से उठाता और रखता रहता बल्कि कई किताबें अपने बैग में

डालकर स्कूल भी ले जाया करता था। धीरे-धीरे पुस्तकों से लगाव और उन्हें खरीदने-सम्भालने का शौक पिताश्री से ही मुझे प्राप्त हुआ। इस प्रकार मैं बचपन में ही bibliophil अर्थात् 'पुस्तक-प्रेमी' बन गया। पिताश्री क‍+ तरह पुस्तकें संग्रह करने और पढ़ने का शौक मेरा आदर्श बन गया।

आयु के संग यह भी युवा होता गया। पिताश्री का मेरे साथ बहुत लाड-प्यार था। तीन-चार साल की आयु से ही उनके साथ रहा। वह स्टेट सर्विस में तहसीलदार थे, और कई स्थानों पर उनकी तबदीली में मैं सदा उनके साथ रहा और मुझे पुराने महलों और किलों में उनके साथ रहने का अवसर मिला। Tour पर वे मुझे अपने साथ ले जाया करते। वे और उनके चपड़ासी इन किलों और महलों के पुराने इतिहास की कई कहानियां सुनाते थे। इन सब का परिणाम यह हुआ कि इतिहास के प्रति मुझ में प्रगाढ़ रुचि बन गई। यह रंग फिर बाद में किसी तरह न उतरा।

मेरे पिताश्री मेरे इस शौक और रूचि को बढ़ावा देते रहे परन्तु यह स्थिति अधिक न रही। 1935 के आरम्भ में उनके असामयिक देहांत से, जबकि मैं केवल ग्यारह वर्ष का ही था और छटी कलास में पढ़ रहा था, मेरे लिए कई कठिनाइयां तो पैदा हो गईं, परन्तु स्कालर बनने, पुस्तकें इक्कट्ठी करने और पढ़ने का शौक न केवल कायम ही रहा बल्कि प्रबल और दृढ़ होता चला गया। पिताश्री से प्राप्त होने वाली प्रेरणा और प्रभाव का तो अभाव हो गया परन्तु उनकी मृत्यु ने न केवल मुझे चिन्तनशील और भावुक तथा Poetic ही बना दिया।

साथ ही मेरे हृदय को स्पर्श कर मेरे चिन्तन और आदर्शों को एक नया मोड़ दिया, एक निश्चित दिशा प्रदान की-और वह थी कविता और Light Literature के सृजन के लिए प्रेरणा और प्रबल अभिरुचि और साथ ही पिताश्री के अधूरे आदर्शों को पूर्णता की ओर ले जाना।

मेरा आधा जीवन तो कविताएं लिखने और एक सफल साहित्यकार बनने के, प्रयत्न में बीता, बेशक Scholarship की प्रवृत्ति भी पनपती रही और Career की खोज में ऐतिहासिक अनुसंधान जीवन का आदर्श बनता चला गया, और कालान्तर में यही मेरे जीवन की पहचान बन गय, और 1956-57 से इस प्रोग्राम में अधिक रूचि लेने लगा।

.स 'युग' में देवयोग से मेरी मुलाकात एक ऐसे स्कालर संत के साथ हुई जिस का मेरे लेखन और रिसर्च/अनुसंधान Career पर बहुत गहरा और उपयोगी प्रभाव पड़ा। उन दिनों मैं एक Evening College में काम करता था जिसे मैंने 1955 में स्थापित किया था। कालेज से साधारणतया में शाम को साढ़े-आठ बजे के लगभग घर लौटता था। 195/ दिसम्बर महीने की बात है। मैं नियमानुसार घर आया। जैसे ही गली से मैने अपने ड्राईंग रूम में कदम धरा तो बावा विनोबा भावे जी के लिवास और शकल-सूरत के संतरूपी पुरुष को कुर्सी पर विराजमान

देख कर ठिठक गया। लेकिन मुझे अधिक देर आश्चर्य में रहने की जरूरत न रही। इससे पहले कि मैं कुछ बोलूं या अपना आसन ग्रहण करूं, वह सज्जन कहने लगे : "आप मुझ अपरिचित को अचानक अपने कमरे में देखकर अवश्य हैरान होंगे। मुझे सत्यम्-भाई कहकर पुकारते हैं। मैं सर्वोदय कार्यकर्त्ता हूँ और पंजाब, जे०के० और हिमाचल में सर्वोदय आंदोलन का संचालन करता हूँ। मेरा हैड-आफिस पठानकोट में ही है। मैं आप से मिलने के लिए बहुत समय से उत्सुक था..."

"कहिए मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूं।" आखिर मैंने पूछा। मेरा विचार था कि वह शायद चंदा लेने आए हैं। वह मेरे मन की बात ताड़ गए। बोले : "मैं कोई चंदा लेने नहीं आया हूं। इस गली से बार-बार गुजरते हुये आप की खुली खिड़की में से आप की लाइब्रेरी की झलक देखकर आप को और आप के प्रोग्राम को जानने की उत्सुकता बढ़ी। पठानकोट जैसे व्यापारियों के नगर में आप के सिवा किसी घर में एक किताब तक देखने में नहीं आती मेरा भी किताबों से बड़ा प्यार है। आप से परिचय पाने की उत्सुकता में मैं आज बिना time fix किए और बिना आप की इजाज़त के आप के कमरे में घुस आया हूँ..." बस परिचय हो गया और इसने मित्रता का रूप ले लिया।

सत्यम् भाई के निमंत्रण पर मैं उन के निवास स्थान पर गया। उन दिनों वह पठानकोट के एक बहुत बड़े भूमिपति की कोठी में रहते थे। उन की एक दर्जन भर अलमारियों में मध्य एशिया-अफगानिस्तान, ईरान, दक्षिणी रूस के देशों के विषय में बहुमूल्य और दुर्लभ साहित्य का भण्डार था। जिसे देखकर मैं चकित रह गया। कुछ वर्षों बाद पठानकोट में एक रमणीक स्थान पर लोगों के सहयोग से "प्रस्थान आश्रम" नाम से विशाल सर्वोदय केन्द्र स्थापित हुआ जहां सत्यम् भाई की दिनोदिन बढ़ती लायब्रेरी एक बहुमूल्य संग्रह बन गई। उन्होंने वहां एक "सैंट्रल एशियन स्टडीज़" भी स्थापित किया। जल्दी ही सत्यम् की लायब्रेरी मध्य एशिया पर विश्व का सब से बड़ा संग्रहालय बन गया इस की सब से बड़ी विशेषता यह है कि 1942 से लेकर 1991 में मृत्यु पर्यन्त सत्यम् भाई ने मध्य एशिया के सम्बंध में मुख्य अखबारों में छपे समाचारों और लेखों की कटिंग्ज (कतरने) तकनीकी ढंग से फाईलों में लगाई हैं, साथ ही उनका विस्तृत इन्डेक्स भी बना है। एक छोटा कमरा तो इन न्यूज़ पेपर कटिंग्ज से भरा पड़ा था। एक समय अफगानिस्तान की सरकार इस संग्रह को 10, 15 लाख रुपये में खरीदना चाहती थी। परन्तु सत्यम् भाई ने यह कह कर कि यह राष्ट्र की सम्पत्ति है, बिकाऊ नहीं, अफगान अम्बैसेडर को खाली हाथ लौटा दिया। सात आठ वर्ष हुए उनका देहावसान हुए। मृत्यु से कुछ महीने पहले अपना यह संग्रह उन्होंने भारत सरकार के National Museum को दान में दे दिया। जनकारों ने इस की कीमत पचास-साठ लाख रुपये आंकी है।

सत्यम् भाई के व्यक्तित्व और उनके संग्रह के प्रभाव मेरे अनुसंधान और लेखन पर बड़े दूर-तक पड़े और मेरे प्रयत्नों की दिशा ही बदल गई। मेरे ऐतिहासिक शोध का मौलिक और

मुख्य विषय History of North-Western India, from the Yamuna to the Borders of Iran था। जिसमें अफगानिस्तान, विलोचिस्तान, सिंध के अतिरिक्त दिल्ली से पेशावर तक और पंजाब शामिल थे, इसलिए हम दोनों का विषय सांझा और उद्देश्य एक समान होने की बजह से हमारा एक दूसरे से सहयोग बहुत बढ़ गया और हम एक दूसरे के संग्रह का अच्छा उपयोग कर सके। सत्यम् जहां भी रिसर्च और अपने रिकार्ड इकट्ठे करने जाते, मेरे उपयोगी विषय की टाईप कापी भी ले आते। विषय सांझा होने की वजह से हमारे research notes एक दूसरे के लिए उपयोगी सिद्ध होते थे। मैंने उनके संग्रह का काफी प्रयोग किया, और मेरे प्राजैक्ट का रिसर्च स्रोत एक तरह से मुझे घर में ही प्राप्त हो गया। मैं सत्यम् भाई की लगन, अनथक परिश्रम रिसर्च की तकनीक तथा विद्वता से बहुत प्रभावित हुआ। इतना ही नहीं उन्होंने मेरे अनुसंधान के प्रयत्नों और प्रोग्राम को एक नया और practical मोड़ दिया जिस के कारण मैं वह कर पाया हूं जो मैंने आज तक प्राप्त किया है। इतिहास और लेखन के क्षेत्र में सब उपलब्धियां सत्यम् भाई के प्रभाव और प्रेरणा का ही परिणाम है।

1970 में आरम्भ की घटना है। एक दिन सत्यम् बिना किसी अग्रसूचना या प्रोग्राम के हमारे घर आ धमके और आते ही बरस पड़े "यह संग्रह और research किसके लिए और कब के लिए कर रहे हैं। इतना भण्डार आप किस के लिए छोड़ जायेंगे। भगवान न करे कल को अगर आप दुनिया छोड़ जायें तो इस भण्डार का प्रयोग करेगा कौन? आप 14, 15 साल से research कर रहें हैं मगर आपने आज तक एक research paper या पुस्तक तक नहीं लिखी।" सत्यम् की इस admonish से मेरी आंखें खुल गई। उसी दिन से मैंने अपनी रिसर्च फ़ाईलों के भण्डार खोल लिए और लेखन कार्य शुरू कर दिया। आधा दर्जन research papers लिख डाले जो 1970, 1971 में Journals of Indian History, Research Bulletin (arts, Punjab University), Defence Journal Vikrant, Proceedings of Punjab History conference जैसी महत्त्वपूर्ण शोध पत्रिकाओं में छपे। इसी वर्ष मैंने अपनी शोध पुस्तक Maharaja Ranjit Dev and Rise and Fall of Jammu Kingdom लिखी जो 1971 में छपी। गुलाबनामा के अंग्रेज़ी अनुवाद पर भी अंतिम कार्य किया। मेरी हस्तलिखित प्रति को सत्यम् भाई ने टाईप किया। उसी वर्ष सत्यम् मुझे अपने साथ पंजाब हिस्ट्री कान्फ्रैंस का सैशन attend करवाने पटियाला ले गए जहां मैंने अपना पहला रिसर्च पेपर पढ़ा। इस प्रकार ऐतिहासिक अनुसंधान को एक क्रियात्मक दिशा मिली और लेखन कार्य का भी सूत्रपात हुआ जो निरंतर जारी है।

संपर्क : 18-प्रियदर्शनी लेन पास बी. एस. एफ. कैम्प पलौड़ा, जम्मू

प्रस्तुतिः अनीता बलौरिया

मृतकों के लिए प्याऊ

❑ डॉ० चन्द्र प्रकाश देवल

ये लोग
जां बांध रहे हैं आंगन वाले
नीम की डाल से तगरा
ठंडी छाया में

अपने प्यासे पूर्वजों के लिए
छोटी सी प्याऊ लगा रहे हैं
ये जानते ही नहीं
यहाँ पानी पर ढुकते सारे पाखी
उनके परिजन नहीं हैं।

इनमें से कोई पेड़ का पिता है
कोई सांप की मौसी
कोई केंचुए का भाई है
कोई भेड़िये का बेटा।

इनमें वह कुम्हार भी हो सकता है
जो इस तगरे के ठीकरे में
अपना बनाया घड़ा देखने आया हो
और फूटा देख कर
खिन्न मना झल्ला कर
अभी अपने पंख हिलाता हुआ कूद पड़ेगा
तगरे में
देखते देखते
उलीच देगा तगरे का सारा पानी
और पसीने की तरह
भीग तक उड़ जाएगा।

थोड़ा आगे जा कर
अपने पसीने को मिट्टी में मिलाने की गरज से
धूल से नहायेगा।
लोग खुश होंगे
इस मौसम की बरसात आने को है
देखो, चिड़िया धूल में नहा रही है।
इसकी भी संभावना है
यह भी हो सकता है तगरा बांधने वाले
जानते हों सभी कुछ साफ-साफ
और ये प्यास के उपद्रव से डरते हों
मृत आत्माओं से नहीं।
यह मिट्टी का तगरा
फूटे घड़े का अवशेष
शेष रहे जीवित लोगों की ढाल है
ये करते रहेंगे
इसकी ओट में अपनी बचाव
जब तक ये पाखी बन
तगरे पर न जा बैठें।

सम्पर्क : 74 बलदेव नगर, माकड़वाली रोड़, अजमेर 305006 राजस्थान

आप

❑ *दिविक रमेश*

क्या हंसी है आपकी भी, ठीक मेरी उम्मीद सी
हालांकि कम नहीं आपका आश्वासन भी आपकी मक्कारी से

झुझंलाहट मुझे खुद पर भी है
शायद जबान से भी ज़्यादा
अपनी आत्मा पर ठुके ताले से
जिसकी चाबी न जाने किस कमजोर क्षण में सौंप बैठा था आपको
किसी बहुरुपिया विश्वास के भरोसे।

मेरी बेचारगी पर तरस नहीं
एक क्रूर संतोष झलकता है आपकी आंखों से।
जिसे मैं पढ़ सकता हूं, महसूस भी कर सकता हूं।
पर गा नहीं सकता।

मैं आपको न आपके नाम से पुकार सकता हूं और न पदनाम से
मैं नहीं कर सकता सही सही शिनाख्त भी आपकी
मैं लिख सकता हूं केवल एक गोलमोल संबोधन, मसलन, 'आप'
और बरी रह सकता हूं जोखिम से।
आप भी तो बचे रहते हैं घटनाओं में विराजमान, सुरक्षित
बिलकुल नोंक पर रहकर भी।

और मेरी लालसा देखिए
कि हर घड़ी चाहता हूं
बना रहूं मैं भी एक न एक घटना में आपकी बदौलत।
मैंने तो धांधू कुम्हार को भी देखा है उछालें लेते
यानी फेरते हुए उंगली हरफों पर
किसी रहस्यमयी बिमारी से बीमार हो, चल बसे अपने गधों
की मौत की घटना को
सूचना में सुनकर।

मैंने विक्षिप्त होते देखा है अथवा आकस्मिक वैराग्य में

हर समय घटना बने रहने की चाह में
एक से एक को।

यूं कौन है जिसे नहीं भाता घटनाओं के बीच रहना
झुला सकती हैं जो सूचनाओं के पलनों में।

घटना गांव के वीरान स्कूल की जर्जर इमारत भी हो सकती है
और किसी पेड़ से रात में आती आवाज़ों का चमत्कार भी
कितनी सुखद हो उठती है बनते ही सूचना।

संपर्क: मोती लाल नेहरू कॉलेज, बेनीतो जुआरेज़ मार्ग, नई दिल्ली- 110 021

– – –

ठहर नहीं गया हूं

❑ *महाराज कृष्ण संतोषी*

ठहर नहीं गया हूं
बस रूक सा गया हूं
कि स्वयं से पूछ सकूं
कब से चल तो रहा हूं
पर यह क्यों लगता है
कहीं पहुंच नहीं रहा।

पर कहीं पहुंचना भी
क्या अर्थ रखता है
जब मन संकुचित
और दृष्टि बंधी रहे।

जब सर पर आकाश न फैले
और पांव के नीचे
धरती का नाप न बढ़े।

तब पहाड़ दिखे इस तरह
कि ऊंचाई का कोई ख्याल ही न आए
और नदियां देख कर भी
गहराई का भाव न जगे।

ठहर नहीं गया हूं
बस रूक सा गया हूं
कि स्वयं से पूछ सकूं
मैं कहां हूं?

संपर्क: 113-ए, गली अनन्द नगर बोहड़ी, तालाब तिल्लो, जम्मू

यादें–चार कविताएं

❑ *डॉ. नरसिंह श्रीवास्तव*

सूखी नदी

भागते हुए समय के पांव में
फटी बिवाई-सी नदी
सूख गई थी अचानक
एक ही क्षण में,
किनारे विरहणी के सूखे होंठ जैसे
कहना चाह रहे थे कुछ
कह नहीं पा रहे थे
किन्तु तल में रेत की लहरियाँ
कह रही थीं
नदी में एक और अथाह नदी है
जो बहना भूल गई है
डूबता जा रहा हूं जिसमें
यात्रा के बीच में

भूकम्प

धड़ाम से ढह गई छत
भूकम्प के पहले झटके में
दीवारें रो रही थीं
कई बार हिलने के बाद
मेरे चारों बच्चों के साथ
हम सब तुम्हें खोज रहे थे
ढहे हुए समय के मलबे में,
तुम्हारे दाहिने हाथ का पंजा
मलबे से ऊपर उठा हुआ
मुझे दे रहा था सांत्वना
बच्चों को आर्शीवाद।

ठीक उसी समय जब
वासन्ती फूलों से सजी
तुम्हारी अर्थी निकल रही थी
घर के बाहर
गुजरात में हजारों अर्थियाँ
जा रही थीं अपरिचित कंधों पर
एक दुःख हजार गुना बढ़ गया
और हजारों एक में सिमट गये।
ईश्वर नाम के नटखट बच्चे ने
खेल-खेल में तोड़ दिया था
अपने सहस्रों प्रिय खिलौने
घर-घरौंदे ढहा कर
और उसी ने तोड़ दिया
मेरा भी सब से सुन्दर खिलौना
अपना प्रिय मान कर।

आग की लपटों में सुनहरी तस्वीरें

चिनगारियाँ जो चिटक रही थीं
चिता से तुम्हारी
बना रही थीं यादों की लड़ियाँ
पहली बार देखा
आग की लपटों से भी
बनती हैं सुनहरी तस्वीरें
आग में नहाई चन्दन-देह में
जिन्दगी से भी बड़ी आखें
मेरी ओर देखती रही
आकाश की ओर जाती हुई
धरती को छोड़ कर।

पहली बार जाना
तुम्हारे जाने के बाद
धरती और आकाश को
जोड़ती हैं यादें।

सिन्धौरा

प्रतीक सब कुछ कह देता है
बस्तु की बात
फिर भी छिपा लेता है
बहुत कुछ अपने पास
जैसे देवता का मन्दिर
अर्थ क। वाहक शब्द
आकाश का शून्य
द्वार की अल्पना
और तुम्हारा यह सिन्धौरा
मेरा ही दिया हुआ
विवाह की शाश्वत सौगात

तुम यहां नहीं हो
किन्तु यह सिन्धौरा है
जैसे तुम ही हो मेरे पास
श्रृंगार-शीशे के सामने बैठी
चुटकी भर सिंन्दूर से
माँग भरती हुई
करती हो
बच्चो की पढ़ाई और
बेटी के विवाह की बात।
अब सब बच्चे बड़े हैं
खूब लिखे-पढ़े हैं
किंतु सिन्धौरा कहता है बार बार
बच्चों का ध्यान रखना जब तक हूं तुम्हारे पास,
मेरे बूढ़े कंधों पर इतना बड़ा भार।

संपर्क : 'गिरिराज', चारफाटक रोड, मोहद्दीपुर, गोरखपुर-273 008

– – –

चिट्ठी

❑ मोहन राणा

यह चिट्ठी तुम्हारे लिए है
तुम्हारे लिये इसे बंद न करना
पढ़कर संभाल लेना
यह तुम्हारे लिए है

देखो इसे मैंने हाथ से लिखा
एक एक शब्द को ध्यान से लिखा है
इस कागज को कान से लगाओ
यह गुनगुनाहट धरती की
सीत्कार समय की
और इनमें कहीं कांपता हुआ दुःख छिटक बैठा
अक्षरों की मात्राओं की तरह,
पर यह खुशी की चिट्ठी है
किसी लापता खुशी को याद करती

इसे लिख मैं कर लेता हूं स्वयं को आश्वस्त
बंद हो जाएंगी मेरी चिट्ठियाँ खोना
और बिना पढ़ी वे पहुँचेगी पते पर
समय पर अविलंब
इधर उधर की
इसकी उसकी चिट्ठियों में होगी
मेरी चिट्ठी तुम्हारे लिये

कृपया इसे अवश्य पढ़ें
भूलना नहीं इसे फिर से डाक में डालना
यदि यह मिले अवितरित

सम्पर्क : *22/4, शाम नाथ मार्ग, दिल्ली – 110054*

गीत

❑ बृज मोहन

जी भर हंस न पाए थे कि
खुशियां पलट गईं।
सपने अभी सजाए थे कि
नीदें उचट गईं॥
मन का मौसम हरसिंगार के
फूल खिलाता था,
आंखों के आकाश पे चंदा
हंसता गाता था,
अब जो पर फैलाए
मुक्त उड़ाने सिमट गईं।
जी भर हंस न पाए थे कि
खुशियां पलट गईं।
तुलसी के चौरे पर संध्या
दीप जलाती थी,
रजनीगंधा घर-आंगन में
महक लुटाती थी,
द्वार टंगे तोरण से आकर
सुधियां लिपट गईं।
जी भर हंस न पाए थे कि
खुशियां पलट गईं॥
सोचा था आकाश नया
इक मिलकर कातेंगे,
टांक के उजले चांद-सितारे
झिलमिल बांटेगे,

मन में साध जगाई थी
तदबीरें उलट गईं।
जी भर हंस न पाए थे कि
खुशियां पलट गईं।
सपने अभी सजाए थे कि
नींदे उचट गईं॥

संपर्क: 238, दीवान इस्टेट मुबारक मंडी, जम्मू।

कई रस्मों को इंगित करता एक लोक–गीत

❑ *पृथ्वीनाथ मधुप*

अतीत अपना सच लोक–साहित्य की ज़बान से बोलता है। यह सच समूची संस्कृति का सच होता है। कालचक्र भले ही इस सच पर धुन्ध की घनी पर्तें जमाता जाए, सत्य के अन्वेषी अपनी पैनी दृष्टि से धुन्ध की इन पर्तो को भेदते हैं और सच्चाई से साक्षात्कार कर, साक्षात्कार कराते हैं। हाल ही में पद्म–श्री स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल साक़ी द्वारा संग्रहीत कश्मीरी लोक-गीतों (काऽशिर्य लुकु–बाऽथः जिल्द त्र्याऽ) के तीसरे भाग से गुज़र रहा था कि एक लोक-गीत, जिसकी प्रथम पंक्ति है–**सानि गरि ज़ावय निकुँबायि लो लो**–ने मुझे अचानक अपनी ओर आकृष्ट किया। यह लोक–गीत उन अधिकांश रस्मों (अनुष्ठानों) की ओर इंगित करता है जो कश्मीरी पण्डित समाज में बच्चे के जन्म से लेकर विद्यालय जाने की रस्मों से संबधित हैं।

एक ब्याहता अपने जीवन एवं अस्तित्व को तभी सफसल मानती है जब उसे माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हो। एक माँ अपने सीने में की मचलती ममता एवं असीम वात्सल्य जब अपनी सन्तान पर वारती रहती है तभी उसे लगने लगता है कि उसकी ज़िन्दगी का कुछ अर्थ है, तभी उसे अनिर्वच आनन्द, सुख और परम सन्तुष्टि का एहसास होता है। इस, सुख एवं सन्तुष्टि को पाने के लिए एक नारी गर्भधारण से लेकर सन्तान जनने तक के अनेक कष्टों को खुशी–खुशी सहन करती है। कभी–कभी इस असह्य कष्टकर स्थिति से गुज़रते हुए उसे ज़िन्दगी और मौत के बीच झूलना पड़ता है, पर सन्तान–सुख के लिये उसे अपनी ज़िन्दगी दाँव पर लगाना सार्थक लगता है। सन्तान जनने पर जननी कितने आह्लाद का अनुभव करती है उस आह्लाद की अभिव्यक्ति उक्त पुस्तक में संकलित लोक–गीत की आरम्भिक पक्तियाँ करती है :–

सानि गरि जावय निकुँबायि लोलो/सानि गरि ज़ावय निकुँवायि लो लो

हमारे घर में एक शिशु का जन्म हुआ!/ एक शिशु का जन्म हुआ हमारे घर में!!

हृदय की गहराइयों से अनायास ही निकले इन शब्दों की आवृत्ति तथा 'लो लो' शब्द 'अतीव प्रसन्नता की स्थिति को रेखांकित करते हैं। यह खुशी मात्र मातृहृदय की ही खुशी नहीं है पूरे परिवार की है, इसीलिए 'सानि गरि' (हमारे घर में) शब्द निस्सृत हुए हैं। पूरे घर-परिवार के तन्तु किस मजबूती कितने स्नेह–सौहार्द से अनुस्यूत हुआ करते थे यह इन शब्दों की स्पष्ट ध्वनि है। दादी मां, सास मां ननदें तथा अन्य गर्भवती को बहुत स्नेह देती थीं, सदा इसका

ध्यान रखती थीं। इसके खाद्या-खाद्य का खयाल रखती थीं। इन दिनों की मानसिकता के अनुरूप गर्भवती से बातचीत एवं व्यवहार करती थीं। आजकल की तरह यह सिर्फ पति-पत्नी का मुआमला ही नहीं समझा जाता था। घर-परिवार का हर सदस्य-सदस्या अपने-अपने ढंग से पांव भारी हुई महिला का ध्यान रखती थी।

आठ महीनों तक पेट में पल रहे शिशु को नौवें महीने में जनने पर माँ कितनी प्रसन्न हो जाती है इसका संकेत कथित लोक-गीत में यों दिया गया है :-

आऽठ येंथ यलिम्येआदा गय/नव्यमि येंतुं ज़ामय निकुंबायि लो लो!

याने-गर्भ के आठ महीने गुज़रने पर/नौवें महीने में मैंने शिशु को जन्मा

शिशु ने जन्म लिया! परिवार में एक नये सदस्य का इज़ाफा हुआ। घर प्रसन्नता से सराबोर हो गया! परिवार की खुशियों को सब के साथ सांझा करने के लिए तथा शिशु का जीवन मंगलमय बनाने के लिए विभिन्न रस्मों का आयोजन होता है। इस क्रम का पहला आयोजन 'त्रुय' है। प्रसूति के तीसरे दिन यह रस्म होती है। इस दिन सफेद तिल सरसों के तेल में तले जाते हैं। इन तले तिलों के साथ मिश्री के छोटे-छोटे टुकड़े, बादाम की गिरियाँ तथा तनिक-सा नमक मिलाथा जाता है। इस मिश्रण को लोक-भाषा में 'गूज' कहते हैं। 'गूज' तैयार हो जाने पर इसे नैवेद्य मंत्रों से अभिमंत्रित किया जाता है तथा थोड़ा-सा पक्षियों के चुगने के लिए डाला जाता है। फिर थोड़ा-सा 'हुर्यल्यजा', ज़च्चा के 'हुर' याने पुआल के बिछौने के एक किनारे कोने में रखी गई हंड़िया में, जिसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी का प्रतीक माना जाता था, डाला जाता है (आजकल चूंकि प्रसूति किसी हस्पताल या नर्सिंग होम में होती है अत: 'हुर' और 'हुर्यल्यज्य' का रिवाज नहीं) फिर कुछ दाने ज़च्चा तथा नवजात के सिरों पर रखे जाते हैं। तद्नन्तर 'गूज' दो भागों में बांटी जाती है। एक भाग नवजात के ननिहाल वालों को भेजी जाती है और दूसरा भाग घर वाले रखते हैं। घर के प्रत्येक सदस्य/सदस्या को इस भाग में से थोड़ा-थोड़ा प्रसाद के रूप में दिया जाता है। बाकी रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों में बांटी जाती है। ननिहाल वालों के भेजे जाने वाले भाग के साथ अखरोट तथा कुछ नक़दी भी भेजी जाती है। इसे लोक-भाषा में 'आनय' कहते हैं। ननिहाल वाले भी 'गूज' के प्राप्य भाग को रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों में बांटते हैं। इस प्रकार 'त्रुय' एक तरह से नवागन्तुक के आने की सूचना भी है तथा आपसी मेलजोल का एक ज़रिया एवं समाज-धर्म का निर्वाह भी है। यह रस्म सिर्फ 'गूज' बनाने-बांटने तक ही सीमित नहीं रहती थी बल्कि इस दिन अच्छा-ख़ासा भोजन भी दिया जाता था तथा नवागन्तुक के ननिहाल वाले 'फूवोत' याने कपड़ों तथा नक़दी आदि भी भेटें लेकर भी आते थे पर अब इसका रिवाज नहीं रहा। कथित लोक-गीत में इसका संकेत इस तरह से है :-

त्र्येयॅमि दोहुॅ त्रुॅयबऽतुं रतुंनोवुम/फ्वो 'त ह्यथ म्ये' मालिन्य आयि लो लो?

यानी–तीसरे दिन 'त्र्यभात' पकवाया/मैके वाले भेटें ले कर आ गये।

चूंकि कश्मीर की जलवायु ठंडी है, पुराकाल में यह जलवायु और भी ठंडी हुआ करती थी, इसलिए ज़च्चा बच्चा को सर्दी से बचाने के लिए एक कमरे में, जिसको गर्म रखा जाता था, ग्यारह दिन तक रखा जाता था। ऐसा करने से इन्हें एक तो ऊष्णता प्राप्त होती थी और दूसरे इन्हें निमोनिया या ज़ुकाम आदि सर्दी के रोगों से बचाया जाता था। ज़च्चा-बच्चा को पुआल के बिछौने याने 'हुर' पर रखने का यह भी मक़सद लगता है। पुआल फर्श की ठंड ऊपर नहीं आने देता। ग्यारहवें दिन ज़च्चा को इस गर्म कमरे से बाहर सामान्य तापमान के कमरे में निकाला जाता था क्योंकि अब तक ज़च्चा की शारीरिक अवस्था सामान्य तक पहुँच जाती थी। फिर भी, सावधानी बरतते हुए कुछ समय सामान्य तापमान में जच्चा को रख कर उसे क़हवा चाय, जिसमें दालचीनी छोटी इलायची कुतरी बादाम गिरी तथा तले हुए आमिष के टुकड़ों के साथ पिलाई जाती थी। इससे ज़च्चा के शरीर में ऊष्मा आती थी और वह अपने में ऊर्जा के संचार का अनुभव भी करती थी। ज़च्चा के साथ-साथ घर के अन्य लोग भी इस 'मो'गुॅल्य' याने क़हवे का आनन्द लेते थे। इस बारे में लोक-गीत में यों चर्चा है :-

कऽहिमि दोहुॅ द्रायस अऽन्दरूॅ न्य़बर/खास्यन फिरुॅवय चाय लो लो।

ग्यारहवें दिन मैं अन्दर से बाहर आई/आपने खासुओं * में चाय भर दी!

शिशु जब ग्यारह दिन का हो जाता तो उसे बारहवें दिन एक श्वेत मलमल के कपड़े में लपेट घर के 'ब्रांद'[2] पर निकाला जाता था। यहां उसे कुछ क्षण बाहों पर रख धूप में रखा जाता था। शिशु को धूप में रखना वैज्ञानिक दृष्टि से भी सर्वथा उचित है। धूप से बच्चे को विटामिन 'डी' मिलता है और साथ ही इससे उसके कई रोगों का निधान भी हो जाता है। शिशुओं का पीलिया धूप से ठीक हो जाता है। इस प्रकार यह रस्म एक महत्त्वपूर्ण रस्म है। इससे पूर्वजों के वैज्ञानिक सोच की ओर झुकाव का पता भी चलता है। लोक-गीत में इस रस्म का ज्यों संकेत है :-

बऽहिमिदोहुॅ ब्रांदस प्यठ कडुॅथो निको/स्वर्गुॅ मंजुॅ पोश ख्वो'त आयि लो लो!

याने–मुन्ने! बारहवें दिन तुझे 'ब्रांद' पर निकालूंगी? धूप में ऐसे लग रहे हो जैसे नन्दन में पुष्प विकसा हो!

---

* *खोस : कांसे का बना चाय-पात्र (प्याला, कप) जिसमें कश्मीरी पंडित चाय पीते थे। मिट्टी या चीनी मिट्टी के प्याले में पण्डितों के लिए चाय या कोई पेय पीना वर्जित था। इसके वैज्ञानिक कारण हैं। आजकल के मॉडर्न पंडित ऐसा नहीं मानते। 'खाऽस्य' 'खोस' का बहुवचन।*

2. *'ब्रांद' : कश्मीरी पण्डितों के मकानों के मुख्य प्रवेश द्वार से सटा सामने का उठा प्लेटफॉर्म-सा जिससे हो कर ही घर में प्रवेश किया जाता था। गृहिणी सुबह सवेरे प्रतिदिन इसे लीपा करती थी। इस लीपन को लोक-भाषा में 'ब्रांद फश कहते थे। 'ब्रांद' को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था कि गृहिणी को 'ब्रांदुॅकऽन्य' याने ब्रांद की शिला (नींव-पत्थर) कहा जाता था।*

शिशु जन्म के तेरहवें दिन, प्रसूता के ससुराल उसके मैके का कोई व्यक्ति, भाई, बहन या कोई और जाता है और प्रसूता को उसके ससुराल वालों की अनुमति से मैके लाता है। यहाँ माँ-बच्चे की देखभाल अत्यन्त ध्यान से की जाती है। प्रसव के दिन से लेकर चालीसवें दिन तक प्रसूता को हाथ तक ठंडे पानी से धोने नहीं दिया जाता था। पीने को काफी देर तक उबाला गया पानी, जिसे लोक-भाषा में 'वो'लुंगनवोन्य' या 'फो'ट' कहते थे पिलाया जाता था। हरी सब्ज़ियाँ तथा फल भी इसके लिए वर्जित हुआ करते थे। ज़्यादातर मॉस का शोरबा दिया जाता था। नवजात/नवजाता को ज्यादा समय नानी या सासियाँ आदि ही संभालती थीं। माँ के पास शिशु को तभी लिया जाता था जब उसे दूध पीना होता था। बोतल से बेबी मिल्क 'पिलाने का रिवाज़ नहीं था। देखिये प्रसूता के मैके जाने तथा शिशु को ननिहाल की महिलाओं-कन्याओं द्वारा संभालने के बारे में लोक-गीत क्या इशारा देता है :-

त्रुवाऽहिमि दोहुँआवम्ये' मालिन्य क्रोन/ललुँवान छय

बंगाऽल्यवायि लो लो!

तेरहवें दिन मेरे मैके वाले आ गये/तुम्हें स्नेह पूर्वक हलराया-दुलराया जा रहा है।

'फो'ट' पिलाने, हरी सब्ज़ियाँ व फल न खाने देने तथा ठंडे पानी से हाथ न धोने का रिवाज आजकल, आयुर्विज्ञान की प्रगति के कारण, समाप्त हो गया है, पर तेरहवें दिन प्रसूता को मैके ले जाने का रिवाज कश्मीरी पण्डित परिवारों में अब भी जिन्दा है।

शास्त्रानुसार छठे[1] / सातवें मास में ठोस आहार खिलाने का आदेश है। इस आदेश का पालन आजकल भी हो रहा है। प्रथम बार शिशु को जब अन्न खिलाया जाता है इसे 'ओपचोप' या 'अनुँप्राऽविश' कहते हैं। इस दिन चोका-चूल्हा लीप कर/साफ कर, बर्तन मांज कर तथा इन्हें लाल मिट्टी से धोकर (आजकल केवल बर्तन साफ करने की साबुन से धोकर) खीर पकाई जाती है। इस खीर के एक भाग को मंत्रों से अभिमंत्रित कर तथा देवी का भोग लग कर तनिक-सा शिशु को चटाया जाता है। पहले यह भी रिवाज था कि विभिन्न व्यवसायों से संबन्धित वस्तुओं के लघु रूप शिशु के सामने रखे जाते थे। शिशु जिस वस्तु की ओर पहले आकृष्ट होता था और छूता था समझा जाता था कि शिशु आगामी जीवन में उसी वस्तु से संबन्धित व्यवसाय को अपनायेगा। इस विचार में पूर्वजन्म की स्मृति शिशु के दिमाग़ में मौजूद होने की या उसकी पूर्व तीव्र वासना की बात संन्निहित है। संबन्धियों तथा पड़ोसियों में भी इस अवसर पर खीर बाँटने की प्रथा है। घरवाले तथा ननिहाल वाले इस अवसर पर बच्चे के लिए नई थाली, गिलास, कटोरी तथा चम्मच आदि लाते हैं। ननिहाल वाले बच्चे के लिए नये कपड़े भी भेजते हैं। इस ओर संकेत करते हुए लोक-गीत कहता है :-

---

1. *षष्ठेमासे अन्नप्राशनं*

अनुँप्राऽविश करूँमयच्ये/थाल ओ'नुम स्वनुँ मुलुँमायि लो लो!

जब तुम्हारा अन्न प्राशन किया/तुम्हारे लिए सोने का पानी चढ़ी थाली लाई

बच्चे का पहला जन्म दिन उसकी जननी के लिए ही नहीं बल्कि पूरे घर-परिवार तथा उसके ननिहाल वालों के लिए अपार हर्ष एवं उल्लास का दिन होता है। पहला जन्म-दिन ही नहीं, अपितु बच्चे का हर जन्म दिन खुशियों भरा होता है। कश्मीरी पण्डित जन्म दिन पर विशेष पूजा का आयोजन करते हैं। इस पूजा के लिए पीले चावल याने 'तऽहर' विशेष रूप से बनती है। पूजा के अन्त के करीब एक थाली में 'तऽहर' में से कुछ भाग तथा एक प्लेट में थोड़ी सी 'तऽहर' पूजा की जगह रखी जाती है। प्लेट की 'तऽहर' में से थोड़ी-थोड़ी 'तऽहर' उठा कर हथेली एवं उंगलियों के दबाव से सात लम्बे गोले से बना कर प्लेट में ही रखे जाते हैं। थाली में की 'तऽहर' को नैवेद्य मंत्रों से अभिमंत्रित किया जाता है। इस दौरान बच्चे की मां तथा बच्चा थाली को दायें हाथ की तर्जनी तथा अंगूठे से छुए रखते हैं। इसके पश्चात् प्लेट में की 'तऽहर' को अभिमंत्रित किया जाता है। प्लेट में के सात गोलों को क्रमशः सात चिरंजीवियों याने अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, कृपाचार्य, मार्काण्डेय तथा परशुराम को भोग लगया जाता है। इन सात चिरजीवियों से प्रार्थना की जाती है कि जिसका जन्म-दिन है उसे भी आप चिरजीवी होने का वरदान दें। प्लेट में की 'तऽहर' तथा गोले पूजा की समाप्ति पर पक्षियों को डाले जाते हैं। पूजा का निर्माल्य किसी बहते जल-स्रोत या पेड़-पौधे की जड़ों में डाला जाता है। फिर थाली की 'तऽहर' में से तनिक मिश्री तथा दही के साथ तीन ग्राम उठाकर बच्चे को खिलाये जाते हैं। थाली में की 'तऽहर' फिर थोड़ी-थोड़ी करके घर के सभी लोगों को प्रसाद के रूप में दी जाती है। नज़दीक के रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों के घर भी थोड़ी-थोड़ी 'तऽहर' भेज आशीर्वाद दी जाती है। वे अपने आशीर्वाद स्वरूप थोड़ी मिश्री या कई बादाम उस पात्र में भेजते हैं जिस पात्र में उन्हें 'तऽहर' भेज दी गई थी। बच्चे के ननिहाल वाले बच्चे तथा उसकी माँ के लिए नये कपड़े भेज देते हैं। इस दिन एक अच्छी खासी दावत भी दी जाती हैं जिसमें रिश्तेदार, पड़ोसी तथा बच्चे के ननिहाल की ओर के संबन्धी (जो बच्चे की माँ से उम्र में छोटे हों) शरीक होते हैं। लोक-गीत में बच्चे के पहले जन्म-दिन के विषय में इस प्रकार इंगित किया गया है :-

वोहर्स्वोद चोनुय ये'लि वोतुम/ज़ियाफऽच़ करिमय बे वायि लो लो!

तुम्हारे जन्म दिन पर कितने ही पकवान एवं ज़ियाफतें बनाई।

कश्मीरी पण्डितों को शताब्दियों से पठन-पाठन-लेखन अत्यन्त प्रिय रहा है। इस बात की तस्दीक़ एक कश्मीरी कहावत-**मुठ ठोठ कटस, क़लम टोठ बटस** याने मोठ भेड़ को तथा लेखनी कश्मीरी पण्डित को प्यारी होती है। अतः बच्चा जब विद्यालय जाने की उम्र का हो जाता है और उसे विद्यालय में प्रवेश कराया जाता है तो यह सुअवस पूरे

परिवार के लिए एक शुभ तथा हर्ष का अवसर होता है। इस शुभ अवसर पर पूरे मुहल्ले में नान बाँटे जाते थे और घर की महिलाएं मंगलगान गाती थीं। आजकल बच्चे को सहपाठियों में कुछ टॉफियां बांट कर ही इस रस्म की इतिश्री की जाती है। देखिये बच्चे को विद्यालय में प्रवेश दिलाने की प्रसन्नता ने लोक-गीत में ज्यों शब्दों का रूप धारण किया है :-

ये'मि विज़ि द्राहम चाटॅुहालस/वनॅुनॅुनि विगिने द्रायि लो लो।

च़्वो'चि बाऽगरुॅ नि बुॅ पानुॅ द्रायस।
खानॅुमाऽलिस लऽग्यम आय लो लो।
याने-जब चटशाला की ओर कदम बढ़ाया।
अप्सरायें मंगल-गान गाने निकली!
मैं स्वयं नान बांटने निकली/मेरा लाड़ला दीर्घायु हो!

इस लोक-गीत को लिपिबद्ध करने के बाद लोक-गीत संग्रहकर्ता ने गीत के अन्त में पाद टिप्पणी:[1] में लिखा है[2]

'यिछकरिबाऽथ छु बटन हुॅन्दयन तिमन साखिनुय रसमन नऽन्यर करान यिमुॅरसुॅम तिम शुर ज़्यनुॅ प्यठुॅ तऽमिस चाटुॅहाल सोज़नस ताम पूरुॅ छि करान।' अर्थात् 'यह छकरि' लोक-गीत कश्मीरी पंड़ितों की उन सभी रस्मों के बारे में प्रकाश डालता है जो वे सन्तान जन्म से लेकर उसे पाठशाला भेजने तक पूरा करते हैं। संकलन-कर्ता के इस कथन से क़तई सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि **'उन सभी रस्मों के बारे में'** लोक-गीत में प्रकाश नहीं डाला गया है। कई ज़रूरी रस्मों जैसे 'काहनेथुॅर', 'स्वन्दर', 'मासुॅनेथुर' तथा 'ज़रुॅ कासय' आदि का उल्लेख लोक-गीत में नहीं है। वैसे बहुत बड़े एवं ज़रूरी अनुष्ठान 'मेखल' के बारे में भी लोक-गीत मौन है। ऐसा क्यों है? हो सकता है कि इस लोक-गीत के कई अंश मौखिक परम्परा द्वारा हम तक पहुंचते-पहुंचते विस्मृति के गर्त में पड़कर दब गये हों या जिस व्यक्ति या व्यक्तियों से संकलनकर्ता ने इस लोक-गीत को सुनकर लेखनी के हवाले किया हो उनकी भूल या बात को गम्भीरता से न लिये जाने के कारण ऐसा हुआ हो। क्या ऐसी संभावना हो सकती है कि क़ातिब से किताबत करते समय गीत के कुछ अंश छूट गये हो? श्री मोतीलाल साक़ी जैसा विद्वान यों ही यह बात नहीं लिखेगा कि '**....तिमन सारिनॅुय रसमन नऽन्यर करान...**' उन सभी रस्मों के बारे में प्रकाश डालता है...। खैर, लोक-साहित्य प्रेमी विद्वानों एवं अनुसंधानकर्ताओं को चाहिए कि इस पर अनुसंधान करें।

---

1. *देखिये 'काऽशिर्य लुकुॅ-बाथ: जिल्द: 3;'' कश्मीरी लोक- गीत: भाग: 3, संग्रहकर्ता: मोतीलाल साक़ी; पृष्ठ: 123, प्रकाशक: जम्मू एण्ड कश्मीर अकादमी आफ आर्ट, कलचर एण्ड लैंग्वेजिज़, श्रीनगर.*
2. *कश्मीरी लोक-गीतों की एक विधा।*

पाठकों की जिज्ञासा शान्त हो इस कारण कथित लोक-गीत का मूल पाठ, जैसा 'काऽशिर्य लूकुंबाऽथ जिल्द त्र्य (कश्मीरी लोक-गीत भाग तीन' में के पृष्ठ 122-123 पर दिया गया है, तथा हिन्दी पद्यानुवाद साथ-साथ दिया जाए। देखिये :-

मूल कश्मीरी

छकरिबाऽथ

सानि गरिज़ावय निकुॅबायि लो लो
सानि गरि ज़ावय निकुॅबायि लो लो
क्वो'रुथ क्या म्योनुय पायि लो लो
सानि गरिज़ावय निकुॅ बायि लो लो
आऽठ येंथये 'लिम्ये आदा गय
नऽव्यमि येंतुॅज़ामय निकुॅबायि लो लो
त्र्ययमि दोहुॅ त्रुयबतु रनुॅनोवुम
फ्वो'त ह्यथम्ये' मालिन्य आयि लो लो
कऽह्यमि दोहुॅ त्रायस अऽन्दरुॅ न्यबर
खास्यन फिरुॅवय चाय लो लो
बऽह्यमि दो'हुॅ ब्रांदस प्यठ कडुॅथो निको
स्वगुॅ मज़ुॅ पोश ख्वो'त आयि लो लो
त्रुवाऽहिमि दोहुॅ आवम्ये मालिन्य क्रोन
ललुॅवान छय बंगाऽल्य बायि लो लो
खो'नि मंज़ुॅलिस मंज़ करय गुरुॅ गूर
अऽलुॅरान चो'न्ज़ुॅ तय दायि लो लो
रंगुॅदार वोनय बनियानाह
तथ लगन सलुये डायि लो लो
अनुॅप्राऽविश कऽरुॅमय च़ये
थाल ओ'नुम स्वनुॅ मुलुॅमायि लो लो
वोहरुॅवोद चोनुय ये'लि वो तुम
ज़ियाफऽच़ कर्ये'म बेवायि लो लो
ये'मिविज़ि द्राहम चाटुॅहालस
वनुॅवुॅनि विगिने द्रायि लो लो
च़्वचि़ बाऽगरुॅनि बुॅ पानुॅ द्रायस
खानुॅमाऽलिस लऽग्यम आयि लो लो
सानि गरि ज़ावय निकुॅबायि लो लो

हिन्दी अनुवाद

छकरि गीत

हमारे घर इक शिशु जन्मा
बरसात हुई है खुशियों की
कैसे मेरी है सुध लेनी
बरसात हुई है खुशियों की
आठ महीने बीते जब
नौवें में जना मैंने शिशु तब
मचली डर में खुशियां मेरी
'त्रुय-भात' पकवाया तीजे दिन
न आया मैका भेटों बिन
लाये ये नाना सामग्री
ग्यारहवें दिन आई बाहर
भर दिये चाय-पात्र मनहर
नस-नस में ऊर्जा लहराई
निकालूं मैं दिन बारहवें
तुम्हें 'ब्रांद' पर शिशु मेरे
तेरी छवि नन्दन कलिका-सी
तेरहवें दिन मेरे मैके के
संबन्धी आये मुस्काते
बहनें बाहों पर झुला रही

घुँघरू-पलने में हलराऊं
तेरे कारण लोरी गाऊं
हैं तुझे दासियाँ हलुरातीं
रंगीन स्वेटर बुन लूंगी
ढाई सलाइयों में होगी
पूरी वह, है वांछा मेरी
कर लिया अन्न प्राशन तेरा
चढ़ाया पानी सोने का
सलोने! थाली पर तेरी
जनम दिन तेरा जब आया
बनाया भोजन मनभाया
ज़ियाफत की किस्में सारी
क़दम रखा चटशाला में
गाये कितने मंगल गाने
अप्सरियों ने तब खुशी-खुशी
नान बांटने मैं खुद ही
स्वजनों के घर हो प्रमन गई
लम्बी आयु निमित्त तेरी
बरसात हुई है खुशियों की।

संपर्क : 84/C 3, ओमनगर, उदयवाला, बोढ़ी, जम्मू— 180 002

इतिहास के झरोखे से

राजा इन्द्रजीत की प्रेयसी राय प्रवीण

❑ जगदीश प्रसाद 'साहनी'

ओरछा दरबार की नर्तकी रायप्रवीण के नृत्य कला की चर्चा सम्राट अकबर तक पहुंची। अकबर को जब पता चला कि नृत्य कला व सौन्दर्य की अप्रतिम सुन्दरी राय प्रवीण ओरछा दरबार में है तो उसने सहज ही कहा - फरमान जारी कर राय प्रवीण को शाही दरबार में पेश किया जाये। आगरा के तख्त पर बैठा मुगलिया सल्तनत का महाबली जलालउद्दीन अकबर का यह फरमान ओरछा दरबार में पहुंचा तब इन्द्रजीत सिंह अपनी प्रेयसी राय प्रवीण के विचारों में खोये थे। उनके दरबार में महाकवि केशव दास दरबारी कवि थे जो उस समय कवि प्रिया ग्रंथ तैयार कर रहे थे। केशवदास ने कवि प्रिया में राय प्रवीण पर अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार दी थी–

राय प्रवीन की शारदा, सुचि रुचि रंजित अंग।
वीना, पुस्तक, धारिणी, राजहंस युत संग॥
वृसभवाहिनी, अंगयत, वासुकि लसति प्रवीन।
सिव संग सोहि सर्वदा, सिवा की राय प्रवीन॥

तभी प्रहरी ने बताया महाराज सम्राट अकबर का दूत शाही फरमान लाया है। आपसे मिलना चाहता है।

राजा इन्द्रजीत दरबार में शाही दूत से मिले। फरमान था नर्तकी राय प्रवीण को सम्राट अकबर के दरबार में पेश किया जाये।

फरमान पढ़ते ही इन्द्रजीत की मुट्ठियां भिंच गईं। ऐसा नहीं हो सकता। राय प्रवीण शाही दरबार में नहीं जायेगी।

लेकिन अगर ऐसा न हुआ तो अनर्थ हो जायेगा। ओरछा की धरती पर रक्त की नदी बह उठेगी। सम्राट अकबर से टकराना सहज नहीं है। मंत्री ने कहा।

लेकिन यह स्वाभिमान और आन की जिद है। राजपूत अपनी मर्यादा देकर किसी से समझौता नहीं करता। राय प्रवीण दरबारी नर्तकी नहीं मेरी प्रेयसी है। जवाव में सिर्फ इतना लिखा जाए राय प्रवीण की पालकीशाही दरबार में नहीं जायेगी।

ओरछा के दुर्ग में जहांगीर महल, शीश महल और राज महल होते हुए भी महाराज इन्द्रजीत ने राय प्रवीण के लिये तीन मंजिला महल बनवाया था। जिसमें राय प्रवीण अपने प्रियतम इन्द्रजीत के लिए टकटकी लगाये रहती थी वह अपने अन्तरमन में इन्द्रजीत को पति रूप में मान कर पति कर्म का पालन करती। जब अकबर का शाही फरमान ओरछा आया तब भी राय प्रवीण विचलित नहीं हुई।

राय प्रवीण की पालकी शाही दरबार जब न पहुंची तब बादशाह अकबर की त्योरियों पर बल पड़ गये। बुलंद आवाज में कहा–ओरछा पर एक करोड़ रुपये जुर्माना का फरमान जारी किया जाये।

बात बढ़ चुकी थी। जब यह फरमान ओरछा पहंचा तो केशव दास चिन्तित हो गये। जिस बात का भय था वही हुआ। ओरछा के लिए एक करोड़ रुपये जुर्माना दे पाना सहज न था।

केशव दास राय प्रवीण को लेकर अकबर के दरबार में पेश हुए। पहले तो वीरबल से मिले और उनकी मदद से ओरछा पर हुए एक करोड़ रुपये जुर्माना की माफी कराई बाद में राय प्रवीण और सम्राट अकबर की मुलाकात दरबार में हुई। राय प्रवीण के सौन्दर्य को देख कर अकबर अवाक रह गया–सिर्फ इतना ही कहा–इसे शाही हरम में भेजा जाये।

राय प्रवीण ने विनय की दुनिया के हितकारी सम्राट मेरी फरियाद सुनें। इसके बाद राय प्रवीण ने कहा–

विनती राय प्रवीन की,
सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर खात हैं।
बारी, बायस, स्वान॥

बादशाह अकबर राय प्रवीण के इस कथन पर इतना प्रभावित हुआ कि उसने राय प्रवीण को क्षमा कर उसे ओरछा भेज दिया।

इस घटना को बीते पांच सौ वर्ष हो चुके हैं लेकिन आज भी लगता है राय प्रवीण के महल में संगीत के स्वर गूंज रहे हैं। राय प्रवीण महल के थोड़ी ही दूर पर एक विशाल गेट बना है जहां से होकर दुर्ग के जहांगीर महल पहुंचा जा सकता है। जरूरत है पुरातत्व विभाग द्वारा इन धरोहरों को सुरक्षित रखने की। यह महल प्रेम और परिणय के साकार स्मारक हैं जिन्हें बचाना आगामी पीढ़ी को इतिहास का सजीव दर्शन कराना होगा। मैने जब इस महल को देखा तो उस दौर का इतिहास उभर आया कि कभी इन महलों में सामान्य व्यक्ति की पैठ नहीं हो पाती होगी। आज यह महल सुनसान है जहां चिराग तक नहीं जलते। समय की इस विडम्बना पर किसी का वश नहीं है।

संपर्क : साहनी निकेतन, महिलाबाद, लखनऊ।

खण्डहरों में छिपी हैं प्रणय गाथाएं

❑ *धर्मचन्द्र प्रशान्त*

बड़े-बड़े महल समय बीत जाने पर खण्डहर, बन जाते हैं परन्तु उनमें पड़ी रहती है वीर पुरुषों के शौर्य की कहानियाँ और प्रेमियों की प्रणय गाथाएं। किसी राज प्रासाद में है रानी पद्मावती के जौहर की करुण कथा और कहीं पर रणभूमि में वीर गति प्राप्त करने वाले शूरवीरों की तलवारों की झनझनाहटें। महल भले ही खडहरों में बदल गये हैं, उन्हें देखने के लिए हजारों की संख्या में लोग आते रहते हैं। खंडहर तो नहीं बोलते। हां बोलते हैं चारण और भाट जो अपनी सुरीली तानों से सारंगियों के स्वरों में गाते रहते हैं। पर्यटक सुनकर भाव विभोर हो उठते हैं।

प्राचीन महल देश के कई प्रान्तों में है। कई भग्नावशेष हो गये हैं और कुछ बचे भी हैं। इनमें हैं मांडू के महल। मांडू मध्यप्रदेश में है। समुद्रतल से 2000 फुट ऊंचा। बड़ा सुन्दर नगर है परन्तु अतीत में यह बड़ा ही विस्तृत नगर था। इसे मनोरंजन नगरी कहकर लोग पुकारते थे। आज भी इसकी आभा बरकरार है।

इन्हीं खंडहरों में छिपी है रानी रूपमती और राजा बाजबहादुर की प्रणय कहानी। रानी रूपमती और बाजबहादुर एक दूसरे पर कविता और मधुर गीतों के लिए ही मोहित हुए थे। दोनों परिणय सूत्र में बंध भी गये। बाजबहादुर रानी पर इतना आसक्त हो गया कि रणवास से बाहिर निकलना छोड़ दिया था। राज-काज की फिकर भी नहीं रही। दोनों के प्रेम में बाधा आ गयी। मांडू पर सुलतान ने आक्रमण कर दिया। राजा पर विपत्ति के बादल छा गये। उसी मारा-मारी में रूपमती और बाजबहादुर बिछुड़ गये। उसने बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं का मुकाबला किया। पर सैनिकों की कमी के कारण पराजित होकर उसे भागना पड़ा। रानी ने बड़ी वीरता और चतुराई से सुलतान के पाशबिक प्रयास से अपनी लज्जा को बचा तो लिया परन्तु पति से बिछुड़ गयी।

मांडू में एक सुन्दर छोटी-सी बारादरी है उसी में बैठकर वह कुछ समय बाजबहादुर के महल को निहारती। यह प्रक्रिया कुछ समय तक चलती रही। कहते हैं कभी-कभी रानी की विरह वेदना के स्वर आज भी सुनाई पड़ते हैं। बस यही कहानी है, राजा और रानी के अनुपम प्रणय की। वह बिछुड़ गये और फिर उनका मिलन नहीं हो पाया।

मांडू में और भी महल हैं। कुछ ठीक अवस्था में और कई हो चुके हैं अग्नावशेष। एक है जहाज महल। कला का उत्कृष्ट नमूना हैं। एक और है हिंडोला प्रासाद। राजमहलों में इसकी गणना

सर्वोपरि है। चंपाबावली कला का बड़ा सुन्दर नमूना है। इस में कभी रानी रूपमती स्नान करती थी। इसके नीचे दो कमरे हैं जिनमें से बावली का जल आता है, ठण्डा और गरम भी। रेवाकुण्ड एक और जलाशय है जिसे बाज बहादुर ने ही बनवाया था। महल मुसलमान शासकों के आक्रमणों के कारण विध्वंस हो चुका है। मांडू प्रेमी युगल की प्रणय गाथा को तो दरसाता है, साथ ही वहां वीर शासकों के शौर्य और पराक्रम का यशोगान भी सुनने को मिलता है। मालवा के चारण और भाट सारंगियों की मधुर आवाज में वर्णन करते हैं।

संपर्क: 35, जैन बाजार, जम्मू- 180 001

– – –

कश्मीर और कामरूप के बीच सेतु–महारानी अमृतप्रभा

❑ *डॉ० अशोक जेरथ*

कश्मीर भारत के उत्तरी भाग में स्थित है तो कामरूप अर्थात् आसाम उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित है। दोनों प्रातों में हज़ारों मील की दूरी है जिसे द्रुतगति से भागती रेलगाड़ी भी तीन दिन से लेकर पांच दिन की यात्रा ही पार कर सकती है। जरा कल्पना करें कि लगभग दो हज़ार वर्ष पहले कश्मीर से कामरूप की यात्रा कैसे होती होगी जबकि कोई निरन्तर मार्ग नहीं था। एक मात्र साधन घोड़ा ही होता था। निश्चय ही यह यात्रा अति दुरूह और कठिन रही होगी। कई माह की यात्रा कर यात्री कामरूप पहुंचते होंगे और यह यात्रा सम्पन्न करना सबके बस की बात नहीं थी। लेकिन यह ऐतिहासिक तथ्य है कि लगभग 24 ई० में कश्मीर के राजा मेघवाहन ने यह लम्बी यात्रा कामरूप से आए स्वयंवर के निमन्त्रण को स्वीकार कर सम्पन्न की थी। तत्कालीन कामरूप सम्राट की शहजादी अमृतप्रभा के स्वयंवर का न्योता कश्मीर के भावी राजा मेघवाहन को भी दिया गया था।

कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिनी में अनेक दिलचस्प घटनायें दर्ज हैं। इस राज-धारा का आरम्भ कल्हण गोनंद वंश को मानते हैं जिसके कुल 31 सम्राटों ने कश्मीर पर लगभग 1015 वर्ष तक राज्य किया। इस वंश का अंतिम राजा युधिष्ठिर प्रथम था। जिसके बाद यह राज्य विक्रमादित्य वंश के अधिकार में चला गया। इस वंश ने कुल 192 वर्ष तक राज्य किया। विक्रमादित्य वंश के कुल पांच सम्राट हुए हैं। इस वंश परम्परा का अंतिम राजा ज्येन्द्र हुआ है जो शुरू में तो एक अच्छा शासक था पर कालान्तर में अति महत्वाकांक्षी तथा एश्वर्य में रत हो गया परिणाम स्वरूप प्रजा उससे तंग पड़ गई थी। उसकी मृत्यु पर उसी का सताया मंत्री पुनर्जीवन पाकर सन्धिमान व आर्यराजा के नाम से राजा बना। लगभग 47 वर्ष तक कश्मीर पर राज्य करने के बाद उसने सन्यास ले लिया इस प्रकार एक बार फिर से राजा की खोज शुरू हुई। गोनंद वंश से सम्बधित राजा मेघवाहन गन्धार में चला गया था जहां से कश्मीर के मंत्रियों की प्रार्थना पर वह श्रीनगर लौटा और राजसिंहासन ग्रहण किया। वह अहिंसा का पुजारी था अत: उसने सिंहासन पर बैठते ही पशुहत्या बंद करने का नियम बनाया फलस्वरूप उसके शासन काल में सभी जीव उन्मुक्त भाव से विचरते थे। मेघवाहन केवल अहिंसा का पुजारी ही नहीं एक अनन्य योद्धा था जिसने राजतरंगिनी के अनुसार श्री लंका के अधिपति राक्षस सम्राट विभीषण को भी विजित कर यह आदेश

मानने पर बाध्य कर दिया था कि वे मांस भक्षण छोड़ दें। गान्धार से कश्मीर आने से पहले मेघवाहन को अमृतप्रभा के स्वयंवर का न्योता मिला था अतः एक अच्छा अवसर जान मेघवाहन अपने अंगरक्षकों के साथ कामरूप की ओर निकल पड़ा। स्वयंवर में भारतवर्ष से अनेक प्रांतों से सम्राट, राजकुमार और दिग्गज अपना भाग्य आजमाने पहुंचे थे। वहां कोई किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा नहीं थी अपितु राजकुमारी के पिता के पास वंशपरम्परा से भेंट में दिया गया एक तिलस्मी छाता था जिसे भागदन्त वंश के किसी सम्राट ने वर्षा के देवता वरूण से हासिल किया था। यह दैवीय छाता अति करामाती था। जब भी किसी भावी सम्राट के सर पर रखा जाता तो इससे ठण्डी बयार छाया सहित स्वयं ही उभर आती थी। अतः उक्त स्वयंवर में राजकुमारी स्वयंवर की जयमाला लेकर एक-एक सम्राट व वहां उपस्थित, अपना भाग्य आज़माने आए, राजधिकारियों की ओर निहारती आगे बढ़ रही थी तो उसी क्रम में वह दैवीय छाता लिए एक राजकर्मचारी प्रत्येक राजधिकारी के पीछे से उसके सर पर वह छाता कर देता। राजकुमारी दैवीय छाते पर कोई प्रभाव न पाकर आगे बढ़ जाती। जब वही छाता मेघवाहन के सर पर रखा गया तो आकांक्षित फल सामने था। मेघवाहन के सर पर ठण्डी छाया की परिछाई साफ दिखने लगी थी। फलस्वरूप राजकुमारी ने मेघवाहन के गले में जयमाला डाल दी दोनों की शादी बड़ी धूम-धाम से हुई और दहेज में अनेक राजसी वस्तुओं के साथ-साथ वह दैवीय छाता भी भेंट स्वरूप मेघवाहन को मिला। इसी शादी के तुरंत बाद मेघवाहन को कश्मीर का राजा बनने का न्योता मिला था। बाद में मेघवाहन ने सम्राट बनने पर चार शादियां और की जिन से यूकदेवी, इन्द्रदेवी, खादना तथा सम्भा नामक चार रानिया क्रमशः उसके रनवास की शोभा बढ़ाने लगी थीं पर अमृतप्रभा उसकी मुख्य रानी रही। वैसे भी राजा को इस रानी पर गर्व था क्योंकि स्वयंवर में अनेक राजाओं की उपस्थिति में वह इसे ब्याह लाया था। अमृतप्रभा अति सुन्दर सुशिक्षित धर्मपरायणा महिला थी। राज्य के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए वह मेघवाहन के साथ-साथ रहती थी और अनेक बार अपने दूरदर्शी तथा सूझबूझ से भरे मशवरों से सम्राट को सहयोग भी देती थी। अपने पति की रुचियों के अनुरूप यह महिला बुद्धमत की अनन्य उपासिका थी। कामरूप में उन दिनों स्तंपा नामक बौद्धभिक्षु अति चर्चित विद्वान था जो तिब्बत से भारत में बुद्धमत का अध्ययन और शिक्षण के लिए आया था और कामरूप में ही अपना केन्द्र स्थापित कर अध्ययन कर रहा था। राजा उसकी प्रगल्भ बुद्धी से अति प्रभावित था फलस्वरूप उसे राजा ने अपना गुरु मान लिया था स्तंपा राजकुमारी का भी गुरु था। राजकुमारी की शादी के बाद वह राजकुमारी के साथ कश्मीर आ गया था शायद इस दृष्टि से कि वहां से तिब्बत जाना सुलभ होगा या फिर उन दिनों कश्मीर बुद्धमत के प्रचार, प्रसार एवं अध्ययन का मुख्य केन्द्र था। कश्मीर में आकर वह वहीं पर रच बस गया। लो स्तॅपा नामक एक विहार की स्थापना उसके कर कमलों से हुई। राजा मेघवाहन ने अनेक बौद्ध विहार एवं बौद्ध मठों की स्थापना की जिनमें मेघवन, मेघमठ आदि प्रमुख हैं। मयुष्ठग्राम

नामक एक गांव की भी स्थापना मेघवाहन ने बौद्ध भिक्षुओं के वास के लिए की थी। इन्हीं के अनुरूप रानी अमृतप्रभा ने भी भिक्षुओं के रहने और शिक्षा दीक्षा के लिए एक विशाल विहार का निर्माण किया जो उस समय तक बने बौद्धमठों में से सब से विशाल भवन था। अमृतभवन नामक इस विहार में बौद्ध भिक्षुओं को धर्मशिक्षा दी जाती थी। इसी प्रकार मेघवाहन की अन्य रानियों यूकदेवी, इन्द्रदेवी, खादना एवं सम्मा ने क्रमश: यूक भवन एवं विहार, इन्द्र भवन, खादनस्तूप एवं सम्मा भवन आदि का निर्माण करवाया। इन्द्रदेवी ने तो मठ एवं विहार के साथ-साथ एक चकोर स्तूप का भी निर्माण करवाया।

ऐसा कहा जाता है कि श्री लंका विजय अभियान के दौरान सम्राट मेघवाहन अपने साथ दैवीय छाता भी लेता गया था ताकि दक्षिण-भारत की गर्मी से निजात पा सके। सागर पार करने से पहले वरूण ने एक साबर भील सरदार के भेष में मेघवाहन की परीक्षा ली थी कि सम्राट कितना दयालु है। उसने चण्डिका देवस्थल के सामने बीमार बच्चे के स्वास्थ्य के लिए एक किरात की बलि हेतू ऐसा माया जाल फैलाया कि सम्राट उसमें फंस गया और किरात की नरबलि के स्थान पर अपना सर आगे कर दिया जिससे वरूण अति प्रसन्न हुए और अपने स्वरूप में उसके सामने प्रकट होकर उन्होंने राजा से कहा कि हे राजन यह दैवीय छाता जो तुम अपने साथ लिए चलते हो तुम्हारे ससुराल के एक पूर्वज भौमा द्वारा हमारे नगर से ले जाया गया था। इस दैवीय शक्ति वाले छाते के चले जाने से हमारी पूजा अनेक दुर्घटनाओं से ग्रसित रहने लगी। अत: इस छाते को लेने के लिए ही मैं आया हूं। बदले में वरूण ने राजा को ऐसी शक्ति प्रदान की कि वह अपनी सेना सहित सागर की लहरों को चीरकर श्री लंका में प्रवेश कर सके। कल्हण की राजतरंगिनी में इसका जिक्र व्यौरे से हुआ है। ''आसाम थ्रू एजिस'' के लेखक सूर्य कुमार भुम्यां के अनुसार भागदन्त के शाही वशंजो के पास पड़ी एक पाण्डु-लिपि के अनुसार यह दैवीय छाता सम्राट नरकासुर ने वरूण के छीना था। वाण द्वारा रचित हर्ष चरित के अनुसार यह दैवीय शक्ति वाला छाता कुमार भास्करवर्मण के पास था जो कि सातवीं शताब्दी में कामरूप का सम्राट था। कुमार भास्करवर्मण ने इसे भेंट स्वरूप सम्राट हर्षवर्धन को भेजा था अपने विशेष राज दूत हमस्वेग के माध्यम से ताकि वह सम्राट हर्षवर्धन की मित्रता पा सके। जिसे पाकर सम्राट हर्षवर्धन धन्य हो आया था और सदा के लिए कामरूप के राजा के साथ वह मित्रबन्धन में बंध गया था।

राजा मेघवाहन ने 34 वर्ष तक सफलतापूर्ण कश्मीर पर राज्य किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका बेटा श्रेष्ठसेन प्रवरसेन के नाम से सिंहासन पर बैठा। पर यह सम्राट बाद में एक तीसरे नाम तंजिन से जाना जाने लगा। कल्हण की राजतरंगिनी में इसकी मां का कोई जिक्र नहीं मिलता पर समझा जाता है कि श्रेष्ठसेन राजा मेघवाहन की मुख्य रानी अमृतप्रभा का ही बेटा था। वैसे भी यह बड़ी रानी थी और परम्परा के अनुसार बड़ा राजकुमार ही

गद्दी पर आसीन होता था। पर इतिहास यह नहीं बताता कि सम्राट मेघवाहन के और कितने बेटे थे। अमृतप्रभा एक चर्चित रानी रही है इसमें कोई संदेह नहीं। बाद में अनेक रानियों का नाम अमृतप्रभा के नाम से ही रखा जाता रहा। इतिहास साक्षी है कि कश्मीर और कामरूप में स्थापित यह सम्बन्ध दोनों राज्यों के बीच काफी देर तक एक सेतु की तरह कार्य करता रहा। बाद में ईसा की आठवीं शताब्दी में ललितादित्य मुक्तापीड ने उत्तरपूर्व सीमा क्षेत्र के राज्यों को जीत कर कामरूप तक अपनी सीमा बढ़ाई थी।

संपर्क : 1/118 विकास नगर सरवाल, जम्मू

सांप–सीढ़ी

❑ जसविंदर शर्मा

अब एक बात
स्पष्ट करनी ही पड़ेगी
यूं तो हमारे बच्चों को
एक न एक दिन
हमारी जगह लेनी ही है
उनके लिए
अपनी जगह छोड़ते हुए
हमें दुखी नहीं होना चाहिये
लेकिन पता नहीं कैसे
कुछ कमजोर नस्ल के लोगों ने
सब कुछ गड्ड-मड्ड कर दिया
पीढ़ियों के बीच
घुमावदार सीढ़ियां रख दीं
सांप-सीढ़ी के इस बेतुके खेल में
लोग
अनजान सांपों द्वारा डसे जाने पर
फिसल जाते हैं बार बार
वहां, जहां से खेल शुरू होता है
तब हम लड़ते हैं
अपने ही बहू-बेटे से
बच्चों की तरह।

संपर्क : 5/2 डी, रेल विहार, मसां देवी, पंचकुला – 134109 (हरियाणा)

पुस्तक समीक्षा

जीवनानुभूति की यथार्थ अभिव्यक्ति

❑ डॉ० राहुल

कथाकार के रूप में अपनी स्मरणीय पहचान बना चुके हिमांशु जोशी की रचनात्मकता बहुआयामी है। पिछले लगभग चार दशकों से वे विभिन्न विषयों पर चर्चित कहानियां लिख चुके हैं। उनकी कुछ कहानियों का विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है। 'बीसवीं सदी: हिन्दी की मानक कहानियां' के तृतीय खंड में इन पंक्तियों के लेखक ने उनकी ''अगला यथार्थ'' शीर्षक कहानी को संकलित किया है। इस परिप्रेक्ष्य में मैंने लिखा है कि, ''जोशी जी की कहानियों में जीवन के बुनियादी तत्त्व विद्यमान हैं। जीवन की परतों को उधेड़कर उन्हें साफ देखा जा सकता है। उनमें परिवेश की गहरी पकड़ है। वे परिवेश के सहारे कथा को बुनते हैं और धरातल पर आम आदमी की बात करते हैं। जन-जीवन की संवेदना के स्तर पर भी इनकी कहानियां अपना विशेष अर्थ रखती हैं। उनमें जिन्दगी का जिया-भोगा सच, कथ्य इस कदर सघन-संवेद्य है कि सामाजिक सहज ही अभिभूत हो उठता है।

''इस बार फिर बर्फ गिरी तो'' उनकी पन्द्रह कहानियों का सुंदर संकलन पाठकों तक पहुंच रहा है। लेखक के अनुसार, ''ये कहानियां मेरे समग्र साहित्य की एक प्रकार से पहचान हैं। इनमें धूल भी होगी धुआं भी। गढ़ता ही नहीं, अनगढ़ता भी। फिर भी ये मेरी हैं। नितान्त अपनी। अपनी जी हुई। देखी हुई। सुनी हुई। अपने अस्तित्व की एक पहचान भी।'' (फलैप) कहें कि ये कहानियाँ कहानियां नहीं, जीवन-जगत की थातियां है। इनमें भारतीय ग्राम्य जीवन-समाज के अन्तः चित्र प्रस्तुत हुए हैं। जिनमें बार-बार कृतिमताओं से परे जीते हुए व्यक्ति-मन के भाव उभरकर आते हैं। प्रायः सभी का केन्द्र-बिन्दु एक ही है-वैयक्तिक सुख-दुख, अभाव और उसके कारण उत्पन्न होती हुई विभिन्न स्थितियां जो कभी पारिवारिक विघटन, तो कभी असफल प्रेम-सम्बन्धों का कारण बनती हैं। 'अंधेरा और', 'तरपन' अपने ही कस्बे में', 'नंगे पांव के निशान' और 'अन्तराल' शीर्षक कहानियां प्रसंगात पठनीय हैं। ''अंधेरा और'' का पात्र पसरिया को मानसिक अंधेरे से बाहर निकलने का कोई रास्ता ही नहीं दिखता। आर्थिक विपन्नता ने उसे कमजोर कर दिया है, उसके साहस को तोड़ दिया है लेकिन कंचनिया की भावुकता उसे शक्ति-प्रदान करती है। वह अपने को रोक नहीं पाता और पुलिस, प्रशासन की अंधेरगर्दी के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। आर्थिक विपन्नता का दिलदर्दी दृश्य 'अन्ततः' में दिखाई देता है।

इधर कई नामी-गरामी कथाकारों की कथात्मक रचनाओं में सामाजिक विसंगति-शोषण उत्पीड़न, निरीहता और करुणा के घुले-मिले रूप-रंग-राग दिखाई/सुनाई पड़ते हैं। चाहे रामधारी सिंह दिवाकर की कहानी पढ़ें या मंजूरे एहतेशाम की। मिथिलेश्वर या स्वदेश दीपक की सेरा, यात्री की कहानी पढ़ें या इबाहीम शरीफ की, या तरसेम गुजराल की कहानी पढ़ें-सबमें समाज में बढ़ती हुई आधुनिकता के फैशन के साथ कहानी में उभरते नये बिम्ब-बोध दिखाई देते हैं मगर हिमांशु जोशी की कहानियां उनसे अलग अपनी माटी की सोंधी गंध लिए हैं। यद्यपि उनमें कहीं-कहीं भावनाओं के कुहासे का अहसास (भी) होता है लेकिन यह अहसास उस ढंग का नहीं जैसा कि रेणु की कहानी ''मारे गए गुलफाम'' में है जिसमें किसी बोध को रोमांस के स्तर पर उछालकर भावनात्मक बताने की चेष्टा में न केवल उनको विषयान्तर किया है, बल्कि बहुत हद तक आहत हो जाने के डर से छोड़ दिया है। मन के भीतरी सत्यों को उजागर करने के लिए लेखक संकेत-पद्धति का आश्रय नहीं लेता, अपितु स्त्री-पुरुष के अन्तर्सम्बन्धों और निजी-रिश्तों-सरोकारों के सहारे भावानात्मक स्तर पर उसे रूपायित करता है। कहानी के पात्रों में ठहराव नहीं, एक गति है। वे स्थितियों को अपनी नियति मानकर उसमें ही जीने को तैयार नहीं है। प्रसंगात ''नई बात'' और ''मनुष्य चिह्न'' शीर्षक कहानियां इस दृष्टि से अपना सार्थक पक्ष प्रस्तुत करती हैं।

समीक्ष्य संग्रह की शीर्षक कहानी ''इस बार फिर वर्ष गिरी तो'' में मानवीय संवेदना का प्रबल पक्ष उजागर हुआ है। इजा के मन में एक दंश-भाव भरा है जो उसे सालता रहता है। वह अपने स्वार्थ-पूर्ण बेटे और उसकी पत्नी के चरित्र को महसूसती है जो उसके पेंशन के रुपयों को हथियाने के लिए हर तरकीब करते हैं और उसे प्रासकर फिर इजा को मांस-पिंड सा घर के एक कोने में डाल उसके सासों को गिनते हैं। ठंड और भूख से पीड़ित इजा के लिए चाय का एक घूंट काफी है। उसके मन में रेवा के पिता के प्रति चिन्ता है, फिर वह रेवा के बच्चों का बड़ा होने और अपने पैरों पर खड़ा होने की चाह लिए होती है। और एक दिन अचानक बर्फ की ठिठुरन से उसकी मृत्यु हो जाती है-वह बर्फ की तरह ठंडी पड़ जाती है। इस प्रकार इसमें विभिन्न कोणों की तस्वीर उतरती चलती है। यही संवेदना और शिल्प उन्हें अपने समकालीन कथाकारों से पृथक पहचान देती है।

हिमांशु जी के अनेक पात्र अपनी प्रमाणिकता लिए होते हैं। उन्हें आत्मपीड़न में भी सुख मिलता है। यह सकारात्मक सोच प्रायः कम कहानीकारों में मिलती है। भारतीय-(विशेषकर पहाड़ी) जीवन-समाज-परिवारों की जिंदगी के जीवन्त अक्स इनकी कहानियों में मिलते हैं। यद्यपि हिमाशुं जी एक जागरूक रचनाकार हैं पर मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित होने के कारण उनका आम आदमी से अधिक जुड़ाव है। वे उसके दुख-दर्द के साथ हैं, भागीदार हैं और समाज-कल्याण के लिए भौतिक परिस्थितियों और पार्थिव कारणों को विशेष, महत्त्व देते हैं। अपनी कहानियों में उन्होंनें उन रूढ़ियों-बेड़ियों को तोड़ा है और नये कथ्य-शिल्प में उनको

रचने का प्रबल प्रयास किया है। इसलिए उनकी कहानियों में निरन्तर ताजगी एवं प्रभावशीलता वनी रहती है–यह विशिष्ट बात है।

समीक्ष्य संग्रह की कहानियों में यथार्थ की गहरी अभिव्यक्ति हुई है। हिमांशु जी यथार्थ को सामाजिक-राजनीतिक खेमों में बांटकर नहीं देखते हैं क्योंकि आज का यथार्थ अत्यन्त मिक्स्ड है। परन्तु कहानी में यथार्थ की स्थिति की प्रस्तुति ही पर्याप्त नहीं है जहां विसंगतियों की यन्त्रणा चित्रित की जाती है। इसके साथ उन बातों और चरित्रों की गहराई में भी जाना जरूरी है जिनके कारण ये विसंगतियां उत्पन्न होती हैं। अपने ही कस्बे में अन्तराल, नंगे पाँव के निशान, सफेद सच शीर्षक कहानियों में संवेदना गहरी है। यह संवेदना यन्त्रणा से उपजी है। लेखक यन्त्रणा के कारणों का नकाब उतारने की कोशश करता है और इसी विरोध में उनकी कहानी व्यवस्था और यन्त्र के विरोध में परिवर्तन का एक शक्तिशाली माध्यम बन जाती है। कहें कि हिमांशु जोशी ने अपनी कहानियों में मानवीय पक्ष को पुष्ट करने पर विशेष बल दिया है।

समकालीन अधिकांश कहानियां राजनीतिक परिवेश को लेकर रची गई हैं। गिरिराज किशोर (पेपरवेट), कमलेश्वर (बयान), मोहन राकेश (परमात्मा का कुत्ता), स्वदेश दीपक (अपा हिज) गोविन्द मिश्र की (धांसू) शीर्षक कहानियां यहां प्रसंगात पठनीय हैं जिनमे जनतन्त्रीय व्यवस्था की खामियां उधेड़ी गई हैं। गहरे व्यंग्य हैं। सातवें दशक के बाद सत्ताधारियों का निजी स्वार्थ और अराजकता की स्थितियों की बड़ी साफ व्यंजना विष्णु नागर की ''शहीद रज्जब'' में हुई है। अमरकान्त, कर्तारसिंह दुग्गल, हृदयेश, दूधनाथ सिंह की कहानियां राजनीति के अलम्बरदारों की अच्छीखासी खबर लेती हैं। हिमांशु जोशी में राजनीति के नये आयाम मिलते हैं किन्तु उनमें शब्दों में आक्रामकता नहीं है। प्रशासनिक व्यवस्था, भ्रष्टाचार, स्वार्थ, अजनबीपन और रिश्तों के असली रूप हमारे सामने आते हैं। आज समाज में विश्रृंखलता है, टूटन है, नैतिकता का घोर पतन है, आदर्श आधुनिकता की धारा में बह गया है, दैनिक जीवन में तनाव के दंश हैं। इस प्रकार जीवन-समाज का घोर यथार्थ हमारे सामने है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। 'काला दरिया,' और 'जड़ें' कहानियों में ग्राम्य-जीवन का सच चित्रित हुआ है।''...लू का तभी एक जलता झोंका आया। उसने किवाड़ फटाक् से बन्द किए। मुंह का पसीना आंचल से पोंछा। कटे केले के तने की तरह बिछौने पर लुढ़क पड़ी।''...ग्रामीम परिवेश का एक बिम्ब...'' उसे अपना नन्हा सा पहाड़ी गांव याद आया, जिसकी बगल से कलकलाती छोटी-सी खोली (नदी) बहती थी। संखमरूड़ की एक सफेद लकीर-सी खिंच जाती थी–दूर तक सामने देवदार के पेड़ों की ओट में बड़ा-सा गंगनाथ ज्यू का थान, जहां वह कभी अपनी बूढ़ी आमा के साथ तीज-त्यौहारों को गंगाजल चढ़ाने जाती थी।''...'जड़' कहानी में भी इसी तरह कथात्मक तारतम्यता के साथ समय-समाज और आदमी को देखा जा सकता है। वह आदमी जो दीन-हीन है। जिन्दगी की पकड़ का समूचापन हिमांशुजी की इस कहानी में प्रस्तुत हुआ

है–अर्थात् आम आदमी की एक मुकम्मल तस्वीर–देखो, हमारे पुरखों के मकान की यह कैसी दुरगति हो गई। लोगों की बातें सुनकर दिल दरक जाता है। जंगले गिरने को हैं। काठ की सीढ़ियाँ झूलने लगी हैं। दीवारों में जगह–जगह दरारें। पत्थर निकलने लगे हैं... ऐसी ही हालत खेतों की है, जिसकी जहां बन आई, उसने वहीं दबा ली है। दस दुश्मन हैं यार। मुँह छिपाकर हंसते।'' पृ०। 30।

इस प्रकार, हिमाशुं जोशी की कहानियों की संरचना स्वयं ढलती है, उसे ढाला नहीं गया है। ये अपने समय–समाज के साथ एक संवाद हैं जो समय और परिवेश को हमारे सामने खोल देती हैं। ''आदमी जमाने का'' में के घुग्घू का आदर्श चरित्र सभी के लिए अनुकरणीय है। यहां भी जिन्दगी का यथार्थ सहज–आमफहम भाषा में चित्रित हुआ है। जोशी जी की भाषा की विशेषता है कि वह आमफहम होते हुए साहित्यक स्तर की ऊँचाई लिए होती है जिससे सम्प्रेषण सर्वग्राही होता है। ये अपने अनुभव को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं किन्तु कहीं-कहीं आत्म–चरित्रात्मक शैली का प्रयोग कथ्य की चूलें ढीली कर देता है जिससे वाक्–स्फीति के बढ़ने की संभावना बनी रहती है। बावजूद इसके ये कहानियां उम्दा किस्म की हैं और पाठक को भीतर तक छूने की पूरी शक्ति रखती हैं। सुगमता उनकी शिल्प–शैली की पहचान है। समाहार रूप में ये कहानियां परिवेशगत यथार्थ के बीच आदमी की ज़िन्दगी के हर पहलू, हर क्षण के जीवन संघर्ष और उसके साधारण अनुभव का असाधारण बयान हैं।

संपर्कः साहित्य कुटीर, साईट-2, 44 विकास पुरी, नई दिल्ली-18

इस बार फिर बर्फ गिरी तो/हिमांशु जोशी
इंद्रप्रस्थ प्रकाशन/के-71, कृष्णानगर, दिल्ली-51
मूल्य : 150/- पृष्ठ 160

कश्मीर का साहित्यिक संदर्भ : एक बहस

(डॉ० रतनलाल शांत के नवीन ग्रंथ का प्रसंग)

❑ *श्याम बिहारी 'सागर'*

सुनने में आया था कि किसी अदीब ने ताना कसा है ''हयो, तोहि क्या कोखुं इमन बाहन वॅरियऩ, सिर्फ वदुन तुं बदुन'' बात सच्ची है पर चुभती नहीं। उन अदीब से कहना चाहूंगा भाई ठीक है हम रोए... क्योंकि कम से कम हमारे पास रोने की आज़ादी तो है लेकिन तुम्हारा क्या बना... तुमने भी तो लोगों की चीखों को उनके हल्क में घोंटते सुना होगा...तुमने भी तो उनके अश्कों को उनकी आंखों में सुखाए जाते देखा होगा...तुमने उस बेमिसाल विरासत को क्यों जलने दिया जिसे कश्मीरियत कहा जाता है। रही हमारे रोने की बात तो हमारे पास अपने आंसुओं का हिसाब है। यह हमारे आसूं हैं जो कलम की रगों में खून बन के दौड़ रहे हैं...यह हमारे आसूं हैं जो उस कत्ल की जा रही बेमिसाल विरासत को जिंदगी और धड़कनें देने में जुटे हैं।... आज नहीं तो कल तुम्हें सोने की चमक और पीतल का खोट नजर आ ही जाएगा। तब तुम्हें आना होगा हमारे पास यह पूछने के लिए कश्मीरियत क्या है भाईजान...सितम करो चाहे जितना...हम तो दुआएं मांगते हैं।

मेरा यह सौभाग्य कि आदरणीय डॉ० रतन लाल शांत की इस छोटे कलेवर की बड़ी पुस्तक पर दो शब्द लिखने का अवसर मिल रहा है...विशेष रूप से इस लिए क्योंकि मैं भी उनके पढ़ाए अनेक छात्रों में से एक हूं...उनका सहज स्नेह मुझे हर समय प्राप्त रहा...आज जब इस पुस्तक को लेकर कुछ कहना है तो ध्यान तो इसी पर जाएगा..क्या छूटा क्या जुड़ा...हो सकता है मेरी अपनी जिज्ञासाएं सीमाओं का अतिक्रमण कर इधर उधर भटकें सो अग्रिम क्षमा याचना के साथ बात करना चाहूंगा।

कोई आश्चर्य नहीं कि शांत जी ने कश्मीर के साहित्यिक संदर्भों को विषय के रूप में चुना...यह जानते हुए भी कि ऐसे विषयों का पाठक वर्ग..जिज्ञासु प्रकृति का पाठक वर्ग सीमित है। वे उपन्यास लिख सकते थे। उनके विराट लेखकीय व्यक्तित्व को देखते हुए, उनकी क्षमताओं को आंकते हुए, विशेष रूप से उनकी शैलीगत विशेषताओं को देखते हुए उपन्यास के क्षेत्र में तो उनके पास असीम संभावनाएं हैं। कहानी के क्षेत्र में तो सिद्ध हस्त हैं ही...इसी शृंखला को आगे बढ़ा सकते थे...उनका कविता संकलन ''कविता अभी भी''

देख रहा था...किसी नीलाभ झील की ठंडी गहराई लिए हुए कविताएं हैं...और कविता में तो उन्हें प्रथम प्रेम का आश्वासन भी मिलता है...फिर यह कश्मीर के साहित्यिक संदर्भ जैसा विषय क्यों?

मुझे यह चुनाव बहुत ही सजग लेखकीय दायित्व बोध के रूप में दिखता है जो कम से कम आज के दौर में विरल है। दो पंक्तियां स्मृति में आ रही हैं शीर्षक है 'पेड़' ''धूप से बटोरते..हरा रंग..पत्ते मस्त हैं...जड़ें युद्ध में व्यस्त हैं।'' साहित्यिक संदर्भों में कश्मीर का विषय के रूप में चयन ''जड़ो की युद्ध में व्यस्तता की घोषणा है।'' यह सजगता लेखकीय दायित्व बोध की सजगता संभवत: विस्थापन की त्रासदी का एक मात्र उज्जवल पक्ष है। इस बोध के पीछे अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र का व्यापक अनुभव है। मातृभाषा और राष्ट्रीय भाषा के प्रति जीवंत अनुराग है। अपनी धरती अपनी संस्कृति अपनी जड़ों के प्रति एक गहरा आत्मिक लगाव है।

प्रथम परिच्छेद कश्मीरी साहित्य एक प्रवृति गत सर्वेक्षण...जैसे लुटिया में सागर है। हजार वर्षों के साहित्य के इतिहास और प्रवृतियों का सघन लेखा जोखा। यह अकेला निबंध एक बड़े ग्रंथ की बीज प्रस्तुति है जिसमें हमें त्रिक दर्शन से प्रभावित कविता से लेकर आज तक की साहित्यिक प्रवृतियों का परिचय मिलता है। सूफी कविता पर बात करते हुए सूफी कविता का सबसे बड़ा सत्य उद्धारित किया है।

''इसने कश्मीर की पारंपरिक हिंदू रहस्य साधना की रक्षा करते हुए इसे इस्लामी तसव्वुफ की ध्यान केन्द्रित उपासना पद्धति से संपन्न कर दिया और संगीतमय प्रगीत द्वारा समभाव तथा मानव समता के मूल्यों को सुदृढ़ किया''...लगता है कश्मीरियत का आधार भूत सत्य भी यही था।

मेरे मित्र बृजनाथ हाली...सूफी कविता कहते हैं..एक मिसरा उन्होंने कहा जिसकी दूसरी पंक्ति में था ''या मुहमद मुस्तफा'' मैं हैरान हो गया...पूछा पंडित जी यह क्या? कहने लगे, श्याम जी, यह इश्के हकीकी की बातें हैं...आप नहीं समझेंगे...यद्यपि उन्होंने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया...लेकिन मुझे सतंभित कर दिया...मैं सोच रहा था क्या इतनी गहरी जड़ें हैं कश्मीरियत की कि विस्थापित हो चुके हैं फिर भी जमीन से जुड़े संस्कार गुन गुनाते फिरते हैं...जब इस पुस्तक में रामस फकीर..अहद जरगर..वहाब खार न्यामू साहब जैसे लोगों के अनुवाद पढ़ने को मिले कश्मीरियत की तस्वीर तो बे पैकरो पैराहन मेरे सामने आ गई...दिल वाह! वाह! कर उठा। मैं सोच रहा था..यह किसकी बदनज़र लग गई इतनी प्यारी कश्मीरियत को? कश्मीरियत जो दुनिया को अमन, भाईचारे, प्रेम, सहिष्णुता का पैगाम दे सकती थी..बारूद के ढेर पर क्यों बिठा दी गई है? क्यों कत्ल की जा रही है? किसकी शह पर?

तुम क्या जानो 'तालिबान'/रिश्तों की गर्मी/धरती का दर्द/सूफियों संतो के पैगाम/

बुद्ध का निर्वाण/किया कत्लेआम/इंसानियत के जिस्म पर गंदे फोड़े/तुम्हारी जानिब तो/बारूद खुदा है/ताबूत में स्वर्ग/तबाही अल्लाह मेहरबान/...और सुनो मैं तो कहूंगा... ढंके की चोट कहूंगा...जो भी सहना होगा सहूंगा..पर चुप नहीं रहूंगा कश्मीर की आदि कवियित्री ललेश्वरी में ललवाकों के अनुवाद आकर्षण के केंद्र हैं कामायनी और प्रसाद याद आ जाते हैं लेकिन कहीं कहीं कसाव की कमी महसूस होती है। यदि अनुवादों के साथ मूल भी होता और भी अच्छा लगता।

ललेश्वरी के जीवन और साहित्य के लगभग सभी पक्षों को छूते हुए आपने अपनी चिताएं उचित रूप से रखी हैं...जैसे ललवाकों की अधिकारिक विद्वानों द्वारा गहन पाठालोचना और संशोधनों का न हो पाना, परवर्ती प्रक्षेपों से ललवाकों को मुक्त करने की चिंता आदि। लगता है ललवाकों के आध्यात्मिक पक्ष को हल्केपन से लिया गया है साहित्यिक पक्ष पर जोर अधिक है।

शायद अध्यात्मिक विभूतियों और उनके साहित्य को समझने में हमारी संस्कारबद्ध मानसिकता आड़े आती है। हम आध्यात्मिक अनुभव से प्रसूत साहित्य और लौकिक जगत के प्रत्क्षानुमाना धारित साहित्य के अंतर को समझने में चूक जाते हैं। शायद इसी कारण से आध्यात्मिक अनुभव का सरलीकरण करके बचने का प्रयास करते हैं।

अनूदित ही सही ललवाकों को पढ़कर लगा कि मानव मुक्ति का साहित्यिक लक्ष्य किसी धर्मतन्त्र किसी अर्थतन्त्र किसी सामाजिक अथवा राजनैतिक विचारधारा यहां तक की विज्ञान की अभूतपूर्व उपलब्धियों के वश की चीज नहीं...यह सारे तन्त्र विचारधाराएँ आदर्श और विश्वास मानव मात्र के लिए बंधन बुनने वाले उपकरण हैं....केवल अध्यात्म का मार्ग है जो मानव मुक्ति के द्वार खोलता है...क्योंकि यह स्वभाव की खोज है...चित्त की खोज है।

भौतिक जगत के अनुभवों दृष्टा मन और उसका अंहकार है जबकि आध्यात्मिक जगत का दृष्टा चित्त है जिसे अंह भाव साक्षी या दृष्टा भी कहा गया है।

यह संभव नहीं कि जमीन पर खड़ा आदमी आकाश को गोलाइयों में तराशने वाले बाज की दृष्टि से जगत को देख सके। उस दृष्टि को पाने के लिए उस उंचाई तक पहुंचना ही होगा। ललेश्वरी का साहित्य उस उंचाई से देखा गया जगत है।

ललेश्वरी से संबधित लेखों में ललेश्वरी के नाम को लेकर और कायाकल्प जैसी गप्पों और वितंडावाद पर जो चूटीला प्रहार किया गया है बहुत ही प्रासंगिक है सटीक है समयोचित है होना ही चाहिए था।

लेकिन ललेश्वरी को संदर्भ बना कर आपने जो स्त्री समाज की वकालत की है यह पुरुष समाज के साथ ज्यादती है...प्राणी जगत में स्त्री पुरुष एक इसरे के पूरक हैं बल्कि स्त्री तो

इस सारे प्रपंच की कर्त्ता धर्ता है। पुरुष तो स्त्री नाम के खूंटे से बंधे जीवन भर कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटते हैं....मुझे तो बुद्ध याद आ रहे हैं।

न मृत्यु में न जूए से तुम भागे थे यशोधरा से दूसरा प्रसंग ललेश्वरी की निर्वसनता का है। इस प्रसंग ने शायद आपके भीतर के लेखक को गहरे में व्यथित और उद्वेलित किया है। एक तरफ श्रद्धा का ऐसा भाव ''यह अध्ययन और कश्मीरी साहित्य का कोई भी अध्ययन जिस संदर्भ बिंदु को लेकर ही आगे बढ़ सकता है उसी आदि कवियित्री को विनम्रता के साथ''... यह पुस्तक समर्पित कर रहे हैं... दूसरी तरफ उस आलौकिक निर्वसनता को ढांपने का प्रयास भी है... कभी नैतिक वीरता की बात करके कभी उस समय की वस्त्र परंपरा का उल्लेख करके... कहीं यह कह कर कि कश्मीर के इतिहास में इसे नीची निगाह से नहीं देखा गया।

साहित्यिक नग्नता हो सकता है अश्लील न होकर विरोध का स्वर हो जैसा कि अदामोव के प्रोफेसर तरान का उदाहरण देते हुए आपने लिखा है लेकिन ललेश्वरी की नग्नता का तो आयाम ही भिन्न है। एक और विरोधाभास भी है कि एक तरफ यह शिकायत कि पश्चिम ने जिस गति से हमारे चिंतन और जीवन प्रणाली में घुसपैठ की उसके परिणाम में अब हमें अपना साहित्य और साहित्यिक परंपरा अर्नगल लगने लगी है...दूसरी तरफ ललेश्वरी की निर्वसनता की तुलना आर्थर अदामोक के प्रो० तरान से। ऐसा क्यों? महावीर की निर्वमनता से क्यों नहीं और यह शब्द स्वीकारोक्ति

''ललेश्वरी के निर्वसन घूमने की स्वीकारोक्ति में इस स्त्री की नैतिक वीरता को देखा जाना चाहिए''

मेरे गुरू मुझसे बस एक बचन बोले
बाहर से तू सिमट और भीत्तर होले
वही मेरा आदर्श बना आदेश बना
इसीलिए मैं लगी घूमने निर्वसना

जहां तक मेरा ख्याल है घूमने के स्थान पर शब्द नचुन है... अभिधार्थ में लें तो आद ठीक हैं... लेकिन लक्ष्यार्थ में लें तो यह बाहर से भीतर की यात्रा में जो उत्सव खिलता है उसकी ओर संकेत है। इसे आप स्वीकारोक्ति कैसे कहेंगे। स्वीकारोक्ति तो आत्मग्लानी और अपराध बोध से उपजती है। जहां तक वीरता का प्रश्न है... वीरता भय का विलोम भाव है। जिसने मृत्यु से साक्षात् कर लिया वहां कैसा भय कैसी वीरता... वहां तो सभी भाव विशेष हो जाते हैं एक ही भाव शेष रहता है अहैतुक प्रेम का जो किसी लगाव किसी बंधन पर आधारित नहीं होता।

ललेश्वरी की निर्वसनता को देखना हो तो देखना होगा क्यों कोई कबीर चादरें बुनते

बुनते सूली उपर सेज पिया की गाने लगता हैं... क्यों कोई नानक सुच्चा सौदा कर आता है.. क्यों कोई मीरा विष को चरणामृत समझ कर पी जाती है... क्यों कोई चैतन्य अपना व्याकरण भाष्य गंगा की लहरों को अर्पित कर सड़कों गलियों में कीर्तन की धुन में खो जाता है। इस क्यों में ललेश्वरी की निर्वसनत्ता का उत्तर है। ललेश्वरी की निर्वसनता तो जीवन और मृत्यु के पारदर्शी सालात से प्रसूत है... यह दायरों का अनुभव नहीं यह विराट को उसकी समग्रता में देख पा लेने का अनुभव है। यह किसी बौद्धिक कल्पना या बौद्धिक विलासता का अनुभव नहीं...यह परम सत्य परम मुक्ति का अनुभव है जहां भय, इच्छाएं सकंल्प विकल्प यहां तक कि शब्द ध्वनि और चित्रों से निर्मित मनोराज्य खो जाता है इसी को.ललेश्वरी ने मंत्र कहा है...''तंत्र जहां चुक जाए मंत्र बाकी रहता है और मंत्र चुक जाए चित्त ही शेष रहेगा चित्त भी रहे नहीं तो कहां क्या रहे।''

मन और उसके अहंकर से निर्मित सारा जाल मंत्र है...यह तभी चुकेगा जब शरीर सधे स्थिरता को प्राप्त हो...स्नायु तंत्र से उर्जा का प्रवाह बर्हिगमन न करे अंर्तगमन करे..वैसी स्थिति में हृदय की गति धीमी हो जाती है मस्तिष्क को रक्त की आपूर्ति मंद पड़ जाती है...श्वास प्रश्वास की क्रिया कामचलाऊ सीमा तक धीमी हो जाती है...विचार और क्रिया में प्रवाहमान ऊर्जा अंतर्मुखी होकर अंतर्गमन करती हुई मन की परतों को भेदकर चित्त या जिसे स्वभाव कहा जाता है उसे पा लेती है तब यह पारदर्शी सजगता का अनुभव है...अस्तित्व को उसकी विराटता में उसकी भव्यता में उसकी अनंतता में देख पा लेने का अनुभव है। जहां शिव कह उठते हैं 'चैतन्यात्मा नर्तकात्मा' यहां ललवाकों से झांकते एक केन्द्रीय वक्तव्य की और ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा जिसे अध्यात्म की शब्दावली में समय से पार हो जाना कहा जाता है।

प्रेम पगी मैं लल यों घर से निकल पड़ी
उसे ढूंढते मुझे हो गए दिन और रात
देखा पंडित तो मेरे ही घर में थे
यही महूर्त था शुभ जो मैंने गहरा किया

ललेश्वरी से किसी ने पूछा होता परमात्मा को पाने का या मुक्त होने का सबसे अच्छा महूर्त समय कौन सा है तो उत्तर मिला होता अभी यहीं पंडित तो घर में ही है गर्दन झुकाओ और देख लो जिसे खोज रहे हो वह तो पहले से ही पाया हुआ है। इस का अर्थ है जो है उसी को समग्रता से जीना न की संभावनाओं के पीछे भागना स्पर्धाओं का पीछा करना और इस दुनिया को क्रूर से क्रूरतर बनाते जाना परिवर्तन की आकांक्षा ही भविष्य खोजती है और यही समय है जो इन आकांक्षाओं से मुक्त हो जाता है वह समय के पार हो जाता है।

हम ही सदा रहे हैं जग में हम ही सदा रहेंगे चले आ रहे सदा निरंतर रूप ही विगत

समय से ललवाकों पर बात करनी हो तो बात बहुत दूर तक जाती है...यह जो कुछ कहना पड़ा शायद इसीलिए क्योंकि ऐसे अनुभवों की सरल व्याख्याएं नहीं हो सकती। इस देश का आज की तारीख में बड़े से बड़ा दुर्भाग्य है तो वह है अध्यात्म का खो जाना इस देश में जो पंथनिरपेक्षता और सर्वधर्म समभाव की धारणा है यह कोई पश्चिम की दी हुई नहीं फूहड़ ईर्ष्यालू राजनीतिज्ञों की देन है बल्कि जीवन और मृत्यु के जटिल प्रश्नों की खोजबीन और परम तत्व के साक्षात् का व्यापक प्रथम अनुभुव इस धरती पर हुआ इस कारण से है–देखिए ललवाक–

शिव छुई थल थल रोजान
माओ जान हिंद त मुस्लमान

यह कोई दंभग्रस्त वक्तव्य नहीं है जैसे आज हमारे समाजवादी या धर्मनिरपेक्षतावादी ऐसे शब्दों को पान की तरह चबाते हैं और जहां जी चाहे वहीं थूक आते हैं **यह धर्मनिरपेक्षता सत्य की आग से निकल कर आया हुआ आध्यात्मिक** वकतव्य है...हमें यह निश्चित रूप में जान लेना चाहिए कि अध्यात्म का खो जाना भारत की आत्मा का खो जाना है....

दो शब्द अध्यात्म को लेकर और कहना चाहूंगा और अपनी बात को समापन की ओर ले चलूंगा... गीता के अष्टम अध्याय के प्रथम श्लोक में अर्जुन का प्रश्न है "किं तद् ब्रह्म किं अध्यात्मं किं कार्य पुरषोतम"... जिसके उत्तर में कृष्ण कहते हैं अक्षरं बह्मं परमं स्वभावो अध्यात्म उच्यते... स्पष्ट है स्वभाव की खोज ही अध्यात्म है और योग अध्यात्म की शिखर उपलब्धि है... और यह उपलब्धि जो कुछ आपको दे सकती है उसकी तुलना में पचास पृथ्वियों का साम्राज्य फीका है।

मुझे लगता है आज के लेखक साहित्यकार को पश्चिम से जो कुछ मिला उसे देखते परखते हुए अपने पास जो है उसका पुर्नस्मरता पुर्नमुल्यांकन करना होगा। यह काम कुछ संतों महात्माओं तक ही नहीं छोड़ा जा सकता यद्यपि प्रयास तो वे भी करते हैं लेकिन उनके पास भी आधी अधूरी व्याख्याएं हैं। देखने की चीज है लोगों की प्यास। आसाराम आते हैं लाखों की भीड़ जुट जाती है। मुरारी बापू आते हैं मेले लग जाते हैं। क्यों? किस चीज की प्यास है किसकी तलाश, इधर कवि सम्मेलन हो, कहानी गोष्ठी हो, नाटक का मंचन हो लोगों को आमंत्रित करना पड़ता है क्यों? यह इसलिए कि भारत आज भी अपनी आत्मा को खोज रहा हैं। इस कार्य में साहित्यकार को आगे आना होगा एक नए उत्साह के साथ सजगता के साथ दायित्व बोध के साथ।

कुछ शब्द विस्थापन और कश्मीरी विस्थापन साहित्य को लेकर कश्मीर के हिंदी विस्थापन की उपेक्षा इस निबंध में अपेक्षित नहीं थी... इस निबंध को चंद कश्मीरी कवियों और उनकी रचनाओं तक ही सीमित कर दिया गया है चूंकि यह पुस्तक हिंदी और कश्मीरी साहित्य में सेतुवंध के रूप में हमारे सामने आ रही है फिर विस्थापित हिंदी कवियों की उपेक्षा प्रश्नवाचक

है...हालांकि कश्मीरी साहित्यकार अभी भी बचाव की मुद्रा में है यंत्रणा के त्रास से मुक्त नहीं हो पा रहा। शायद जरूरी भी था उसे विश्व के निर्वासन साहित्य से कम से कम हिंदी के निर्वासन साहित्य के आमने सामने किया जाता।

कुल मिलाकर पुस्तक बहुत अच्छी लगी ज्ञानवर्धक लगी। सबसे बड़ी बात यह है कि शांत साहब ने ललेश्वरी से परिचय कराया कश्मीरियत से परिचय करवाया....अच्छी पुस्तक की सबसे बड़ी कसौटी तो यही है जो पाठक को प्रश्नाकुल कर दे।

संपर्क : पी०-364 दुर्गानगर, सेक्टर-II बनतालाब रोड, जम्मू)

ग़ज़ल

❑ *केवल गोस्वामी*

जिन्दगी की शाम है कोई फरिश्ता आएगा।
जो मेरी मय्यत को मेरी कब्र तक ले जाएगा॥

हर कोई मसरुफ़ है दुनिया के इस बाजार में,
कौन मेरा मर्सिया लिखेगा कौन गाएगा॥

अब नजर आती नहीं मुझको मेरी परछाइयां,
दर्द दिल का सीने में ही घुट के अब रह जाएगा।

मौत की आमद की दस्तक जाने कब से हो रही,
खोलने दरवाज़ा कोई कब यहां पर आएगा॥

कैसा शिकवा क्या शिकायत जो भी है तो ठीक है,
बाद मरने के मेरा यह ज़ख्म भी भर जाएगा।

हूक जो दिल से उठी वो अश्क बन के बह गई,
कोरे कागज़ की इबारत कौन अब पढ़ पाएगा॥

संपर्क: जे 363, सरिता बिहार, मथुरा रोड, नई दिल्ली - 110 044

जसरोटा चित्रकला

❑ *मनसा राम 'चंचल'*

सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी का काल डोगरा चित्र-कला का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है। इस काल में अनेक सिद्धहस्त कलाकार इन पहाड़ी क्षेत्रों में आए और उन्होंने मुगल, राजपूत व अन्य शैलियों को स्थानीय परिवेश और शैली से समिश्रण कर एक नई शैली को जन्म दिया, जिसे पहाड़ी या डोगरा चित्र शैली का नाम दिया गया। इस में मौलिक रंगों और मानवीय एवं प्राकृतिक चित्रण का अनूठा मेल है।

उस समय चित्र कला के इस प्रदेश में जो केन्द्र उभर कर सामने आए, उन में बसोहली, जसरोटा, जम्मू, मनकोट बन्द्रालता और पूर्व में कांगड़ा, गुलेर नूरपुर तक यह कला फैली हुई थी। इन समस्त केंद्रों में विषय वस्तु, विन्यास, प्रकृति चित्रण और रंगों के प्रयोग में पर्याप्त एकरूपता है। जहां तक विषय वस्तु का सम्बंध है, उन में कृष्णा लीला, रामायण, देवी देवता, देश अवतार, राग माला, नायक-नायिकाओं के अलावा अपने अभिभावकों के चित्र शामिल हैं।

कार्ल खण्डाल वाला के मुताबिक सर्वप्रथम बसोहली के राजा कृपालपाल ने इन चित्रकारों को प्रश्रय दिया। इसी काल में देवी दास ने 'रस मजंरी' को चित्र रूप प्रदान किया। इस चित्र माला की रचना सन् 1694-95 में हुई। इसी प्रकार ''गीत गोविंद'' का भी चित्रानुवाद हुआ।

इस क्षेत्र में चित्रकला वैसे तो मुगलकाल से भी पुरानी बताई जाती है। लेकिन इस की प्रामाणिक साक्षी उपलब्ध नहीं। लेकिन डोगरा चित्रकला का विधिवत् विकास सोहलवीं शताब्दि से आरंभ हुआ, जबकि औरंगज़ेब दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उस की कला के प्रति अपेक्षा और अरुचि के कारण मुगल दरबार में प्रश्रय पाने वाले कलाकार उत्तर की ओर शिवालक पहाड़ी श्रृंखला के पहाड़ी राजाओं के दरबारों में आ गए। इसका एक अन्य प्रमुख कारण सन् 1707 में नादिर शाह का आक्रमण भी था। इस प्रकार यह कला डुग्गर प्रदेश में आ गई और यहां प्रफुल्लित व विकसित हुई। जम्मू के राजा रणजीत देव, उन का भाई बलवन्त देव (सुरहूईंसर) और जसरोटा का राजा ध्रुव देव दूसरे गुणों के अलावा चित्रकला के प्रेमी भी थे।

'आर्चर' के मुताबिक सन् 1730 से 1785 तक जम्मू क्षेत्र में विभिन्न विषयों पर अनेक चित्र बनाए गए। इससे पहले यहां के चित्रकार राजाओं और दरबारियों के चित्रों तक ही अपनी कला को सीमित रखते थे। उसके मुताबिक सन् 1750 तक इस क्षेत्र में बसोहली चित्रकला का ही प्रभाव रहा। लेकिन बाद में यहां चित्रकला की एक नई शैली उभरी।

जहां तक जम्मू चित्र शैली का सम्बंध है, खण्डालवाला ने इसे पूर्व कांगड़ा शैली का नाम दिया है। इस का अभिप्राय यह है कि कांगड़ा में जब चित्रकला का विकास हुआ तो जम्मू क्षेत्र में उससे पूर्व यह कला विकसित हो चुकी थी। शांत प्रदेश होने के नाते राजस्थान और दिल्ली के अनेक कलाकार इन राज्यों में आबाद हो गए थे।

राजा रणजीत देव के शासन काल में ही कुछ कश्मीरी चित्रकार भी जम्मू आए और यहीं पर बस गए। इन में से कुछ जसरोटा और बसोहली में भी बसे। इन्होंने चित्रों के किनारों पर खूबसूरत फूलनुमा बार्डर बनाने का प्रचलन किया। ये लोग कामगर कहलाते थे। इन का मुखिया जानी नक्काश था। राजा रणजीत देव के शासनकाल के बाद जम्मू कला की दृष्टि से उपजाऊ और प्रशांत प्रदेश न रहा। इसलिए ये लोग जसरोटा, बसोहली आदि राज्यों में चले गए।

डुग्गर प्रांत में जसरोटा का चित्र कला के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रहा। यहां के राजाओं ने भी चित्रकला को प्रश्रय दिया। विश्व प्रसिद्ध चित्रकार नैन सुख और उसके पिता पं. मियो राम के जसरोटा में होने के प्रमाण मिलते हैं। इस परिवार के चार अन्य सदस्य भी जसरोटा में मौजूद थे, जिन्होंने यहां एक नई चित्रशैली विकसित की। बाद में संभवत: ये जम्मू भी आते जाते रहे।

जसरोटा में बनाए गए लघुचित्रों में राजा बलवंत देव (सुरहूईंसर) का वह सुप्रसिद्ध चित्र काफी चर्चित है, जिस में राजा गायिकाओं का संगीत श्रवण कर रहा है। वर्ण विन्यास, सूक्ष्म तूलिका और सुंदर नखशिख की प्रस्तुति इस चित्र की विशेषता है। यह चित्र मौलिक रूप से इस समय लन्दन के अलबर्ट संग्रहालय में मौजूद है और 'आर्चर' ने अपने कैटलाग में विश्व की सुप्रसिद्ध कला के नमूने के तौर पर इसे प्रस्तुत किया है।

इस चित्र की प्रामाणिकता इस बात से भी सिद्ध होती है कि इस चित्र पर नैनसुख ने अपने हाथ से अपना नाम, रचनाकाल और जसरोटा का भी उल्लेख किया है, जो कि डोगरी अक्षरों में है। इसी प्रकार जसरोटा के राजा ध्रुव देव का एक अन्य लघु चित्र उपलब्ध है, जिस में राजा चौपाल में बैठा अपने घोड़े का निरीक्षण कर रहा है। ऐसे कई एक चित्र डोगरा आर्ट गैलरी जम्मू, भूरी सिंह म्यूजियम चम्बा, पटियाला, लाहौर (पाकिस्तान) आदि संग्रहालयों में भी मौजूद हैं।

यह दुर्भाग्य की बात है कि जसरोटा विध्वंस के साथ ही यहां की यह अमूल्य निधि और विरासत भी नष्ट हो गई। अब या तो किन्हीं बाहर के संग्रहालयों में होंगे, जिन के बारे में कुछ ज्ञात नहीं।

चित्रकला के क्षेत्र में एक अन्य विधा है, भित्ति चित्र कला जम्मू क्षेत्र में आज भी कुछ मंदिरों में और सरकारी भवनों में ऐसे चित्र भारी मात्रा, मौजूद हैं। इन में भी तोशाखाना भवन, सूचना विभाग के सांस्कृतिक प्रभाग और दूसरे कई प्रासादों के चित्र या तो समय की मार और रख-रखाव के अभाव में वे नष्ट हो गए या रंग-रोगन की भेंट चढ़ गए।

इसी प्रकार पुरानी मण्डी में स्थित रानी बन्द्राली मंदिर में केवल रामायण कक्ष के ही चित्र

सही हालत में है और वे भी केवल एक कमरे के। इसके अलावा कृष्ण-लीला और शिव कक्ष के चित्र या तो मिट गए हैं या विद्रूप हो गए हैं। अलबत्ता कान्हाचक क्षेत्र के श्री रघुनाथ मंदिर सूई सुम्बली और गुम्बद मंदिरों, मीरा साहेब के श्री कृष्ण मंदिर और श्री रघुनाथ मंदिर धौंथली मंदिर में कुछ चित्र अवश्य अवशिष्ट हैं; लेकिन उन्हें बचाए रखने की कोई व्यवस्था नहीं।

जहां तक जसरोटा का सम्बन्ध है, वहां के महलों के लगभग सभी चित्र नष्ट हो गए हैं। अल्बत्ता कहीं-कहीं उनके निशान मौजूद हैं। राजा हीरा सिंह के महल में चित्रों के लिए बने पैनल तो विद्यमान हैं, लेकिन चित्र नदारद हैं। अलबत्ता द्वारों के ऊपरी डाट्स पर फूल पत्ते और नक्काशी मौजूद है। लेकिन जसरोटा कस्बे (जो कभी जसरोटा छावनी कहा जाता था) में राज पुरोहितों के मकान में तीन भित्ति चित्र मौजूद हैं, जोकि लगभग 18वीं सदी के हैं। इन में भगवान राम का दरबार, भगवान विष्णु और भगवान शिव के चित्र हैं। ये भित्ति चित्र कला के बेहतरीन नमूने हैं। इस के अलावा फुलवाडियां, परियों, दरबानों के चित्र हैं। इस मकान का आधा हिस्सा नए सिरे से बनाया गया है और वहां के चित्र मिटा दिए गए हैं।

पूर्व राज्य जसरोटा के कुछ कस्बों की ध्वस्त हवेलियों की दीवारों पर आज भी हमें कहीं-कहीं भित्ति चित्रों के निशान मिलते हैं; लेकिन दो स्थानों पर तो इन का रूप स्वरूप देखने को अवश्य मिलता है। इन में से एक है फलोट गांव के मेहता परिवार की प्राचीन हवेली और दूसरा है कठुआ से दस किलो मीटर पश्चिम में सुम्मुआं के स्थान पर बना श्री राधाकृष्ण मंदिर। फलोट की मेहता हवेली के चित्र कला और स्तर की दृष्टि से इतने उपादेय नहीं है। फिर उनमें कुछ छेड़छाड कर के उनकी मौलिकता को विद्रूप कर दिया गया है।

जहां तक सुम्मुआं के श्री राधा कृष्णा मंदिर का सम्बंध है, भित्तिचित्रों के क्षेत्र में इस का अपना प्रमुख स्थान है। कला की दृष्टि से भी ये चित्र उत्कृष्ट कोटि के हैं। विषय वस्तु, वर्ण-विन्यास, आकृतियों और वातावरण का चित्रण, भाव भंगिमा और कला सौष्ठव की दृष्टि से ही इन में विशिष्टता झलकती है। एक लम्बे समय तक देखभाल के अभाव, गर्मी-सर्दी, बरसात आदि मौसमों की मार के बावजूद इन का रंगरूप अभी तक बरकरार है। यह सौभाग्य की बात है कि मंदिर के मुख्य द्वार पर इस मंदिर के निर्माता जैलदार काहन सिंह और निर्माण-काल भी अंकित है।

मंदिर काफी ऊंचा और भव्य है। लेकिन इस की भाव्यता से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं, इस की परिक्रमा में चित्रित भित्ति चित्र, जो एक सौ वर्ष के बाद भी आज लगभग सही अवस्था में हैं। इन चित्रों का विषय रामायण, महाभारत, श्रीमद्‌भागवतपुराण और शिवपुराण से लिए हैं और अधिकांश कुछ अनेकता लिए हैं। छत और दीवारों पर विभिन्न खण्डों में वर्गीवृत रूप से इन चित्रों को कलामय ढंग से सजाया गया है।

मध्य के केंद्रीय ब्लाक में श्री कृष्ण को एक साथ अनेक गोपिकाओं के साथ नृत्य करते दिखाया गया है। हर गोपी बाला के साथ एक-एक कृष्ण हैं और पूर्णमाशी की रात को मानवाकृति में चंद्रमा को तारों के साथ पेश किया गया है। इसके अलावा राधा और कृष्ण की कीकली (नृत्य

विशेष), पाण्डवों की द्यूत क्रीड़ा, द्रौपदी पर साड़ियां बढ़ाते कृष्ण, सुभद्रा हरण, श्री कृष्ण की गोकुल यात्रा, कंस हनन जैसे चित्र जहां महाभारत और श्री भागवत्पुराण से लिए गए हैं। वहीं रामायण से राम-रावण युद्ध, भगवान राम की वनवास के बाद अयोध्या वापिसी, जिस में उन्हें रथों के बजाए हांथियों पर बैठे दिखलाया गया है। एक अन्य चित्र में श्री राम लक्ष्मण माता कैकेयी के चरणों के हाथ लगा रहे हैं। इसी प्रकार बाली सुग्रीव युद्ध और राम द्वारा वृक्ष की ओट से तीर चलाना, मारीच बध, राम रावण युद्ध को सुंदर ढंग से दर्शाया गया है। इस चित्रावली में शिव पार्वती द्वारा भांग छनना, समुद्र मन्थन आदि चित्र भी काफी आकर्षक है। इन पैनलों में फुलवाड़ियों और परियों के चित्रों की विद्यमानता से इस शैली पर मुगल शैली का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। तोता और अन्य पक्षियों के चित्र भी इन फुलवाड़ियों पर बना कर इन्हें और सुंदरता प्रदान करदी है।

सुम्मुआं के ये चित्र जहां अन्य डोगरा पहाड़ी चित्र श्रृंखला से कुछ हट कर हैं वहीं आकृतियों की स्पष्टता, सौम्यता, सौंदर्य के अलावा ये डोगरा रंगरूप और आकृतियों से भी मेल खाते हैं। इन में गहरे नीले, केसरी और चाकलेट रंगों का प्रयोग बड़ी उदारता से किया गया है। चित्रों के विवरण में बीरीकी और तीखापन है। रंग भी विशेष रूप से बनाए गए है, जिन की चमक एक शताब्दि बीतने के बाद भी बरकरार है।

जसरोटा के विध्वंस से पचास बरस बाद बने इन चित्रों को यदि हम इस क्षेत्र में उपलब्ध अन्य चित्रों से मिलाकर देखें तो जसरोटा चित्र शैली का पृथक् अस्तित्व स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है।

जसरोटा शैली का एक अन्य लघु चित्र अभी हाल ही में अन्तिम जसरोटिया राजा भूरी सिंह का उनके वंशजों के पास मिला है जो आज कल खानपुर-नगरोटा में हैं। इसमें भी दूसरे पहाड़ी चित्रों से कुछ भिन्नता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि जहां इस कला को सुरक्षित किया जाए, वहीं ऐसे अन्य चित्रों की भी खोज की जाए, ताकि इस क्षेत्र पर विशद प्रकाश पड़ सके।

संपर्क : वार्ड नं. ९, कठुआ

विचार प्रवाह

नारी जीवन: नित्य नई चुनौतियां

❑ *दीदार सिंह*

भारतीय समाज में नारी को बहुत ऊंचा स्थान तथा सम्मान दिया गया है। इसी आधार पर भारत में शक्ति पूजा भी होती है। नारी को प्रेम, ममता, सेवा, त्याग तथा प्रेरणा का स्वरूप माना गया है। हमारे धर्म ग्रन्थों में नारी की बहुत प्रशंसा की गई है, कवियों ने उसकी प्रशंसा में पुल बांध दिए - 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो..........' कहीं उसे दुर्गा, चण्डी का रूप माना गया। नारी यदि फूल जैसी नाजुक, सुन्दर और भावुक है तो चट्टान जैसी दृढ़, वीरांगना और सहनशील भी है।

आज की नारी जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के समान विचर रही है। ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, तकनीकी, प्रशासन, राजनीति, तथा शौर्य का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जहां नारी न उपस्थित हो। आज वह आर्थिक तौर पर भी आत्म-निर्भर हो चुकी है। व्यापार और मार्कीटिंग में भी उसने अपनी पृथक पहिचान बना ली है।

ये सब 'वाह-वाह' की बातें अपने स्थान पर ठीक हैं। लेकिन देखना यह है कि व्यवहारिक रूप से नारी ने कितनी उन्नति की है, कितनी स्वतन्त्र हुई है, कितनी उसकी निजी समस्याएं सुलझी हैं और कितनी उसकी कठिनाइयां कम हुई हैं।

यदि प्राचीन काल की बात करें तो नारी को अर्धांग्नि माने जाने पर भी घर की संपत्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा जाता था। संपति मान कर ही उसे पांडवों ने जूए पर लगा दिया था। सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों में उसका दख़ल न के बराबर रहा है और घर की चारदीवारी से बाहर विचरने की उसे आज्ञा नहीं थी। राजे-महाराजे अथवा पूंजीपति हरम रख सकते थे लेकिन कन्या को अपनी पसन्द का वर चुनने की भी आज़ादी नहीं थी। हर कदम पर नारी का भरपूर शोषण होता था। प्रशासनिक मामलों में उसे वोट देने का अधिकार नहीं था। आज भी कुछ यूरोप के देशों तथा इस्लामी देशों में स्त्री को वोट का अधिकार नहीं है। अपने पड़ोस पाकिस्तान में ही दो स्त्रियों की ग्वाही को एक पुरुष की ग्वाही के समान माना जाता है तथा बलात्कार का अपराध सिद्ध करने का दायित्व भी बलात्कार की शिकार महिला पर है।

हम देखते हैं कि देश की स्वतन्त्रता के पश्चात नारी हर क्षेत्र में उन्नति करके पुरुष के समान विचर रही है। प्रधान मन्त्री, मुख्य मन्त्री, न्यायधीश, राज्यपाल तथा अन्य उच्च प्रशासनिक पदों पर भारतीय नारी आसीन हो चुकी है। लेकिन कितनी स्त्रियां इन पदों तक पहुंच गई हैं! उंगलियों पर गिनने समान भी नहीं। आटे में नमक बराबर भी नहीं। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अनुपात देखो और उनकी उन्नति का अनुपात देखो। सेना के तीनों अंगो के अध्यक्ष सुप्रीम कोर्ट के अध्यक्ष और

राष्ट्रपति के पद अभी तक भारतीय नारी के लिए अछूते हैं।

अभी भी हर क्षेत्र में पुरुषों की अजारादारी है। नारी पर होते अत्याचार कम नहीं हुए। अभी भी भ्रूण हत्याएं रुकी नहीं। अभी भी दूसरी जाति से जीवन-साथी चुनने पर कन्या के गांव की पुरुष-प्रधान पंचायत सबके सामने मृत्यु-दण्ड देती है, उसे नग्न करके सारे गांव के सामने लज्जित करती है, उसका सामूहिक बलात्कार होता है। अभी भी उच्च शिक्षा प्राप्त और ऊंचे पद पर आसीन पति के घर में दहेज के बहाने स्त्री को जलाया जाता है या घर से निकाल दी जाती है और महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की यह उक्ति आज भी सच सिद्ध हो रही है -

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।

हमारे विधान में स्त्री को पुरुष के समान दर्जा दिया गया है। लिंग-भेद के आधार पर स्त्री का हर प्रकार का शोषण बर्जित है। पर कहां यह शोषण अथवा पक्षपात नहीं होता। बावजूद इतने कानूनों के सब कुछ होता हैं। पढ़-लिखकर वह आत्म-निर्भर भी हुई, उच्च पदों पर आसीन भी हुई, पर उतने ही उसके दायित्व और तनाव भी बढ़े।

पहले अगर सन्तान पैदा करना, उसका पालन-पोषण तथा घर-घृहस्थि संभालना उसका दायित्व था तो आज भी यह उसी का दायित्व है। लेकिन इसके साथ अब उसके और दायित्व बढ़ गए हैं। वे दायित्व हैं घर के बाहर के दायित्व। उसे बच्चों को स्कूल का काम भी करवाना पड़ता है और बाहर के झमेलों से भी निपटना होता है। घर के काम में हाथ बटाना पुरुष अपना अपमान समझता है। स्त्री से आशा की जाती है कि वह घर में सब की देख-भाल करे लेकिन उसके स्वयं बीमार पड़ने पर उसकी देख-भाल करने वाला कोई नहीं।

स्त्री के अधिकारों की सुरक्षा सम्बन्धी इतने कानून पास होने के बावजूद उसके विरुद्ध होने वाले अपराधों में कमी नहीं आई। गत वर्ष 23 दिसंबर तक केवल दिल्ली में दी दहेज सम्बंधी 110 मृत्यु, 366 बलात्कार, 487 मारपीट, 1015 अपहरण तथा 580 छेड़खानी के मामले दर्ज किए गए। जिन मामलों की रिपोर्ट नहीं कराई गई वे अलग हैं।

राष्ट्रपति श्री के० आर० नारायणन ने इस वर्ष गणतन्त्र दिवस की पूर्व-संध्या पर राष्ट्र के नाम अपने सन्देश में स्वीकार किया था कि देश में जितनी स्त्रियों की हत्याएं होती हैं उनमें से आधी केवल शायन कक्ष [Bed Room] में ही होती हैं।

बार-बार प्रयास करने पर भी संसद में महिलाओं को 33 प्रतिशत प्रतिनिधित्व देने संबंधी विधेयक पारित तो क्या होना था अभी तक प्रस्तुत नहीं किया जा सका। बहुत सी देश की पंचायतों में जहां महिलाएं पंच अथवा सरपंच चुनी गई हैं, उन्हें अपने पति के आदेशानुसार काम करना पड़ता है, अथवा उनके पति स्वयं ही मनमानी करते हैं क्योंकि पति द्वारा त्याग दिए जाने के भय की तलवार हर समय मौहलाओं के सिर पर लटकती रहती है। भारत में पति की ढाल के बिना

स्त्री हर समय असुरक्षित है। कई बार तो यह पति ही उसकी पीठ का खंजर बन जाता है।

स्त्री को नीचा दिखाने के लिए या उस से प्रतिशोध लेने के लिए उस पर तैज़ाब फेंकना अथवा उसे सबके सामने निर्वस्त्र करना आम बात है जिसके परिणाम स्वरूप कई स्त्रियां आत्म-हत्या कर लेती हैं। छोटी बालिकाओं पर भी कम अत्याचार नहीं होते। बाल-मज़दूरी सम्बन्धी निदेशालय द्वारा सर्वेक्षण की ''भारत में बालिका, धर्म, हिंसा, क्षमता एवं परिवर्तन'' शीर्षक के अर्न्तगत रिपोर्ट में श्री जोसेफ़ गाथिया ने लिखा है यौन-उत्पीड़न का विरोध करने वाली बालिकाओं के तैज़ाब और निर्वस्त्र होने का शिकार होना पड़ता है। विशेष रूप से कोलकाता में ऐसे अपराध होते हैं जिसमें बलात्कार भी शामिल है और वहां हर थाने में हर महीने ऐसे 10 मामले दर्ज होते हैं जब कि 70 प्रतिशत मामलों की रिपोर्ट ही नहीं होती। श्री जोसेफ़ गाथिया ने तीन वर्षों में 18 राज्यों में से कोई 70 स्वयं सेवी संस्थाओं की सहायता से 6 से 18 वर्ष की साढ़े ग्यारह हज़ार लड़कियों से भेंट करके यह रिपोर्ट तैयार की है। ऐसे अपराधों के लिए अधिक से अधिक दो वर्ष की कैद की सज़ा रखी गई। निर्वस्त्र करने से व्यक्ति के निजिपन के मूल अधिकार का उलंघन होता है।

इस रिपोर्टअनुसार 18 वर्ष से कम आयु की 10 लाख लड़कियां घर में नौकरानियों का काम करती हैं और उनके साथ जो हिंसा होती है उसकी कहीं रिपोर्ट नहीं होती। ग्रामीण इलाकों और रीमांड होमज़ में लड़कियों का अधिक शोषण होता है। पहिरावे और घूमने फिरने संबंधी आचार संहिता भी लड़कियों या स्त्रियों के लिए बताई जाती है। प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने वाली बालिकाओं की संख्या भी बालकों से आधी होती है। पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र हरियाणा और आंध्रप्रदेश में भ्रूण हत्याओं में वृद्धि हो रही है। गुजरात और राजस्थान में भी ऐसे अपराध होने लगे हैं।

जेलों में भी महिलाओं की दशा कम शोचनीय नहीं। न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर की अध्यक्षता में नेश्नल एक्सपर्ट कमेटी का गठन किया गया था जिसका उद्देश्य था देश की जेलों में महिला कैदियों की दशा का अध्यन करना। देखने की बात यह है कि न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर ने 1987 में अपनी सिफारिशें पेश की जिन पर अमल करने के लिए केन्द्रीय सरकार 2001 में आदेश जारी किए। इस कमेटी ने देश की उन जेलों का निरीक्षण किया जहां महिला कैदी रखी जाती हैं और 15 वर्ष पूर्व उनकी दयनीय दशा का चित्र प्रस्तुत किया। इस रिपोर्टानुसार महिला कैदियों को जेलों के अति अस्वथ्य माहौल में रखा जाता है, उनका शोषण होता है, बिना कारण लम्बे समय तक उनको अपने परिवार से दूर रखा जाता है, उनके लिए लाभदायक और उद्देश्यपूर्ण रोज़गार की संभावनाओं का अभाव और पुरुष कैदियों की तुलना में उनके पुनर्वास की सुविधाएं बी कम हैं।

राष्ट्रीय महिला आयोग के सदस्यों ने 1990 में जब कुछ जेलों का निरीक्षण, किया था तो पाया था कुछ महिलाएं जो मुकद्दमा चलाए जाने के अधीन थीं, अगर उन पर मुकद्दमा चलाकर उन को जो सज़ा दी जाती उस से दुगने समय से वे जेल में पड़ी हैं और अभी तक उन पर मुकद्दमा

शुरू नहीं हुआ, 72 प्रतिशत महिलाएं जेलों में ऐसी हैं और वे उन सुविधाओं से भी वंचित हैं जो सज़ा पाने वाले कैदियों को मिलती हैं क्योंकि अभी तो इन महिलाओं को सज़ा हुई ही नहीं। महिला कैदियों में 70 प्रतिशत अनपढ़, 90 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों से ओर 70 प्रतिशत विवाहित होती हैं। जेलों में सुधार संबंधी अखिल भारतीय कमेटी ने 1980-83 में सिफारिश की थी कि महिला कैदियों के लिए जेलों की अपेक्षा संरक्षण सदन स्थापित किए जाने चाहिए। स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार, हिंसा, वेश्यावृति के लिए बाध्य करना आदि ऐसे कारण ही महिलाओं को अपराध जगत की ओर ले जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा कल्याणी मेनन सेन तथा ए० के० शिवा कुमार से तैयार करवाई गई भारत के विषय में एक रिपोर्टानुसार, पुलिस द्वारा दर्ज मामलों के आधार पर, भारत में हर 26 मिनटों में एक महिला की मारपीट होती है, हर 34 मिनटों में एक बलात्कार, हर 42 मिनटों में एक यौन-उत्पीड़न, हर 43 मिनटों में एक महिला का अपहरण और हर 93 मिनटों में एक महिला की हत्या होती है। अपितु आपके यह पृष्ठ पढ़ते-पढ़ते एक स्त्री शिशु को जन्म देते मर रही होगी। 40 प्रतिशत से अधिक ऐसी मौतें अकेले उत्तर प्रदेश में होती हैं जहां हर एक मिनट के बाद एक ऐसी मृत्यु होती है।

वर्ष 2001 को नारी जागरण अथवा नारी को अधिक अधिकार देने संबन्धी वर्ष के रूप में मनाया गया। भारत सरकार की ओर से इस मंतव्य के लिए एक पृथक आयोग स्थापित किया जा रहा है। यह आयोग महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण संबन्धी पहले के सभी विधेयकों का जायज़ा लेगा और एक समन्वित विधेयक पारित किया जायगा जिसे 'घरेलू हिंसा निरोधक विधेयक' अथवा Domestic Voilence Prevention Bill [डी० वी० पी०] का नाम दिया गया है। इस विधेयक में महिलाओं सम्बन्धी वर्तमान पक्षपाती कानूनी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया जाएगा और नारी के हित अथवा अधिकारों की रक्षा की जाएगी।

इस विधेयक [डी० वी० पी०] का मसौदा केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल की ओर से कुछ समय पहले पारित किया गया इंडीसेंट रिप्रैज़ेन्टेशन आफ़ विमन ऐक्ट, सती ऐक्ट, नेश्नल कमिशन फ़ार विमन ऐक्ट, इम्मोरल ट्रैफ़िक [प्रिवेंनशन] ऐक्ट और डौरी ऐक्ट मिला कर कोई 22 ऐसे कानूनों का जायज़ा लेने के बाद 'घरेलू हिंसा निरोधक विधेयक' [डी० वी० पी०] का मसौदा तैयार किया गया है।

इस नये विधेयक को पारित होने और लागू करने में कितना समय लगता है और इसके लागू होने से नारी की कठिनाइयों में कितनी कमी आएगी अथवा उसे कितनी राहत मिलेगी यह तो आने वाला समय ही बताएगा।

संपर्क: 613/3 नानक नगर, जम्मू-180004

आयोजन

- **जश्न-ए-शायरी**

  2 मार्च से 8 मार्च तक जश्न-ए-शायरी का आयोजन किया गया। सहयोग उत्तर क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र पटियाला का था। अकैडमी की ओर से पहली बार इस प्रकार का अनूठा प्रयोग किया गया। सप्ताह भर चलने वाले इस कार्यक्रम का उद्‌घाटन डोगरी एवं हिन्दी के ख्याति प्राप्त साहित्यकार श्री वेदराही ने किया। 'जश्न-ए-शायरी' में राज्य की सात प्रमुख भाषाओं (डोगरी, गोजरी, हिन्दी, पंजाबी, पहाड़ी, कश्मीरी और उर्दू) के 125 कवियों ने भाग लिया।

- **सीमा क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम**

  11 मार्च को अकैडमी के सीमा क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत जम्मू-कश्मीर से संबंधित सीमा रेखा के साथ बसने वाले युवा लेखकों के एक दल को उत्तर भारत के प्रमुख साहित्यक एवं सांस्कृतिक केन्द्रों जैसे धर्मशाला, शिमला (हि.प्र.) चंडीगढ़ और दिल्ली को रवाना किया गया। दल के सदस्यों में यशपाल निर्मल, शेख मुहम्मद कल्याण, दयाराम दया, कीमत राज, लक्ष्मी टगोत्रा (जम्मू क्षेत्र), सखर बुलबुल, साहिल बशारत अब्दुल्ला, रशीदूद्दीन रशीद, भगत गुलजार, गुलाम मुहम्मद बेनवा (कश्मीर क्षेत्र) प्रमुख थे।

- **युवा रंगकर्मियों की कार्यशाला का समापन समारोह 17 मार्च**

  संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली के सहयोग से मानसर झील (जम्मू) के सुरम्य वातावरण में 25 फरवरी से 17 मार्च तक आयोजित राज्य के युवा रंगकर्मियों ने नाट्य कार्यशाला में भाग लिया। 17 मार्च को अभिनव सभागार में कार्यशाला के समापन समारोह की अध्यक्षता वाइस-चेयरमैन संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली श्री शामानन्द जालान ने की। इस अवसर पर कार्यशाला के निदेशक श्री बी.आर. भार्गव ने कार्यशाला की उपलब्धियों पर विस्तार से प्रकाश डाला। अकादमी की ओर से वरिष्ठ नाटक निदेशक श्री मिपम ओत्सल ने धन्यवाद प्रस्ताव पेश किया।

- **मुलाकात 21 मार्च :**

  साहित्य अकादमी नई दिल्ली के सहयोग से डोगरी के युवा लेखकों से 'मुलाकात' शीर्षक के अन्तर्गत कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम में नरेन्द्र सिंह चिब, विजय वर्मा, दीपक डोगरा, नसीब सिंह मन्हास और विशन सिंह दर्दी (कवि) और राजराही ने कहानी प्रस्तुत की। साहित्य अकादमी नई दिल्ली की उप-सचिव श्रीमती रेणु मोहन भाण ने धन्यवाद प्रस्ताव पेश किया।

- **रंगों की वादी में चित्रकार**

  23 मार्च से 27 मार्च तक पत्नी टॉप में पांच दिवसीय पेंटर्स कैंप का आयोजन किया गया। कैंप का उद्‌घाटन राज्य के माननीय मुख्यमंत्री डॉ० फारूक अब्दुल्ला ने किया। कैंप में डॉ० दीनानाथ पाथी (भुवनेश्वर), प्रो० प्रेम सिंह(चंडीगढ़), श्री के०खोसा (हिमाचल), एम. ए. महबूब, शफी चमन (श्रीनगर), सुमन गुप्त, विजय सराफ (जम्मू), श्री जगदीश चन्द, काली चरण गुप्ता, वीर मुन्शी, शोभा बनोटा, विनोद शर्मा, कविता जयसवाल और मीना दिओरा (दिल्ली) ने पत्नी टॉप की मोहक वादियों में अपनी परिकल्पना को कैनवास पर उतारा।

Regd No. 28871/76

April-May 2002
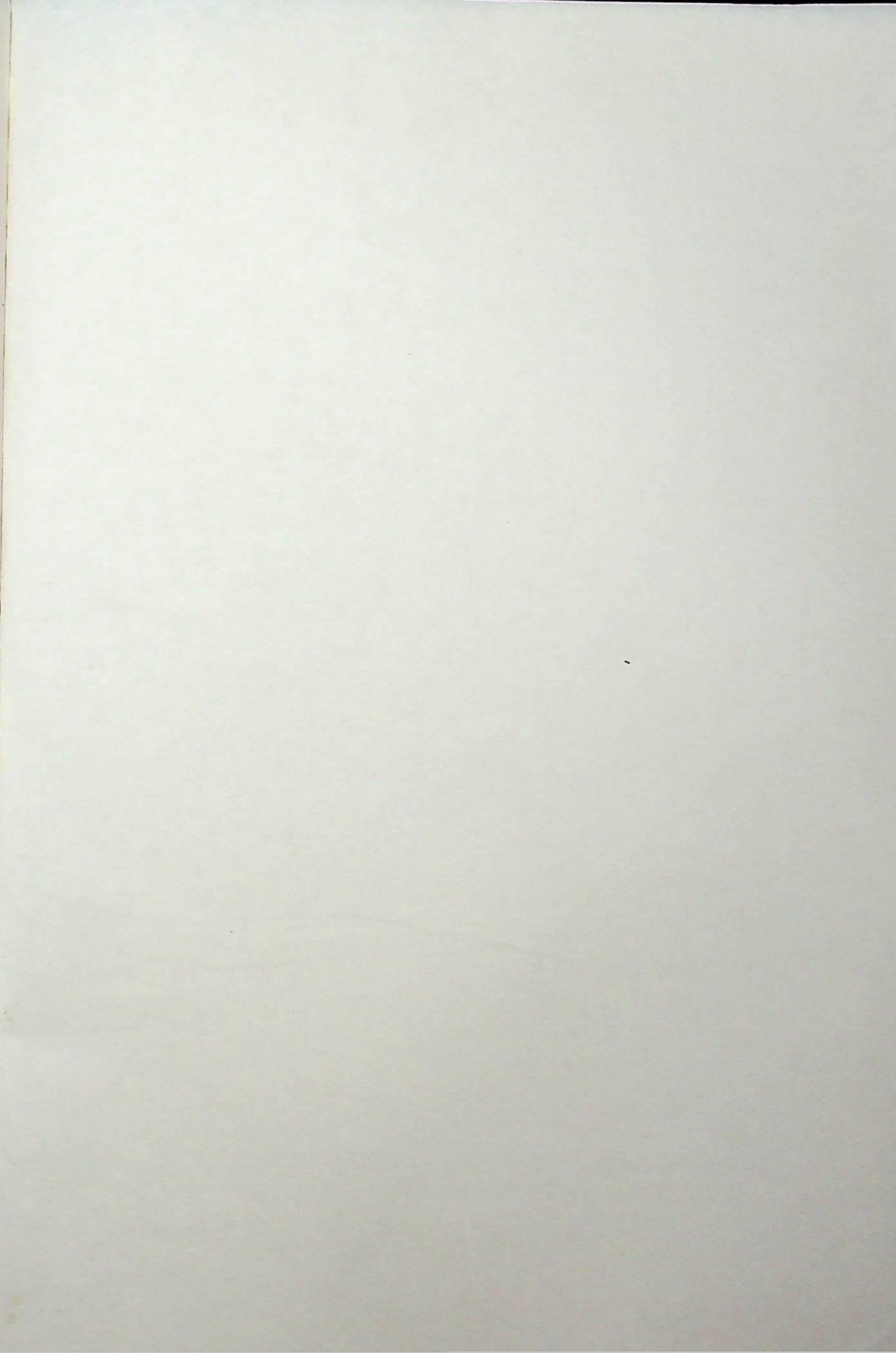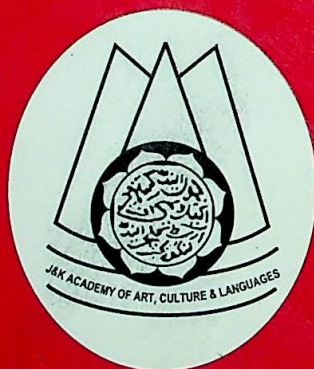
Published by the Secretary on behalf of J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu and Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Punjab)